ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १२ अंक १ चैत्र मास कलियुगाब्द ५१२१ अप्रैल २०१९

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
इरविन खन्ना
चेतराम गर्ग

सम्पादक :
डॉ. राकेश कुमार शर्मा

सह सम्पादक
डॉ. विवेक शर्मा

व्यवस्थापक
प्यार चन्द परमार

सम्पादन सहयोग :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव व डाकघर - नेरी
जिला-हमीरपुर-१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

मूल्यः
प्रति अंक - १५.०० रुपये
वार्षिक - ६०.०० रुपये
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पर्व विशेष

नवसंवत - शास्त्रीय दृष्टि एवं लोक परम्परा - डॉ. ओम दत्त सरोच ३

संवीक्षण

जलियांवाला बाग का नरसंहार और उसका परिणाम - प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री ७

मार्तण्ड-कश्मीर के सूर्य मन्दिर का पुरातात्त्विक अध्ययन - डॉ. सतीश गंजू, - बनीता रानी १६

ममेल शिव मन्दिर का पुरातात्त्विक अध्ययन - डॉ. भाग चन्द चौहान २४

व्यक्तित्व विशेष

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर - कृष्णानन्द सागर २७

यात्रा वृत्तान्त

ब्रह्मपुत्र के किनारे कामाख्या देवी सानिध्य में इतिहास चिन्तन - डॉ. सूरत ठाकुर ३३

ध्येय पथ

राष्ट्रीय परिसंवाद - पश्चिमी हिमालय में पुरातात्त्विक अन्वेषण - डॉ. अंकुश भारद्वाज ४२

गतिविधियां - प्यार चन्द परमार ४७

सम्पादकीय

स्मरणीय ऐतिहासिक पल

प्रयागराज का अर्धकुम्भ इतिहास के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। व्यवस्था पक्ष, आस्था का सैलाब, अपनी परम्परा और विश्वासों के प्रति जागरूकता के इस महासंगम ने देश के प्रधानमन्त्री से लेकर आम आदमी तक को अपनी ओर आकर्षित किया जिसका साक्षी विश्व का मीडिया बना। उतर प्रदेश के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ की प्रशंसा हर कुम्भ यात्री की जुबान पर थी। होती भी क्यों न? उन्होंने मुख्यमन्त्री होने के साथ, योगी होने का साक्षात प्रमाण हिन्दू आस्था के संगम की व्यवस्था को आकर्षक और सुगम बनाने में कोई कोर कसर न छोड़कर दिया। इतने बड़े जन सैलाब में जहां करोड़ों लोगों का आना–जाना हुआ उसमें किसी वस्तु और अपनों को खोने की गुंजाईश न थी। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने कुम्भ मेले को विश्व धरोहर की सूचि में अंकित किया है। यह भारत के लिए गर्व की बात है। यही हमारी संस्कृति और विचार की परिपक्वता है कि जिसे मानव भौतिक तौर से प्राप्त नहीं कर सकता उसे वह भावभावना की अंजुलि से प्राप्त कर लेता है। साधक अपनी साधना से लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर चुका होता है तथा ज्ञान–विज्ञान की खोज फिर लगातार चलती रहती है। यही वह ऋषि परम्परा और साधना है जो हमें आपस में जोड़ती है। पुण्य भूमि भारत, कर्म भूमि भारत, धर्म भूमि भारत का अभिप्राय स्वतः स्फूर्त हो उठता है।

*इतिहास के पन्ने हमारे अतीत के स्मरण मात्र का लेखा–जोखा ही नहीं है। यह भविष्य में आने वाली चुनौतियों और अवसरों का भी ध्यान रखता है। इस वर्ष में कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाएं हैं जिनका स्मरण करना प्रत्येक भारतीय के लिए आवश्यक है – जलियांवाला हत्या काण्ड के सौ वर्ष, महात्मा गान्धी की १५० वीं वर्षगांठ और पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर का जन्मशताब्दी वर्ष महत्वपूर्ण है। साम्राज्यवादी शक्तियों के अत्याचारों का सामना और प्रतिकार की जीती जागती स्मृति है वैसाखी के दिन जनरल डायर द्वारा निहत्थी जनता पर गोलियों कि बौछारें। मानवता और सभ्यता पर कलंक का दाग हैं साम्राज्यवादी शक्तियों की काली करतूतें। डॉ कुलदीप चन्द अग्निहोत्री का लेख उस दृश्य को बयां कर रहा है। इस अंक में प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् व चित्रकार पदमश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर का जीवन चरित्र सब के लिए प्रेरणास्पद है। श्री कृष्णानन्द सागर जी को उनके साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। प्रयास रहेगा कि इस वर्ष के आगामी अंकों में भी उनके विषय में कोई न कोई जानकारी इतिहास दिवाकर में प्रकाशित होती रहेगी। शोध संस्थान नेरी में **'पश्चिमी हिमालय में पुरातात्विक अन्वेषण'** विषय पर आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद विद्वानों के लिए प्रेरणा का केन्द्र बना।*

नववर्ष संवत्सर कलियुग ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ एवं शक संवत् १९४१ की बधाई व हार्दिक शुभकामनाएं। यह नववर्ष सबके लिए मंगलमयी हो।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

पर्व विशेष

नवसम्वत् - शास्त्रीय दृष्टि एवं लोकपरम्परा

डॉ. ओम दत्त सरोच

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में विक्रमी संवत् व्यवहारिक रूप में प्रयुक्त होता है। यद्यपि शक संवत्, कलिसंवत्, सृष्टि संवत्, नानकशाही व कृष्ण संवत् आदि कई संवत् प्रचलन में है, परन्तु धार्मिक, सांस्कृतिक व पारम्परिक क्रिया-कलाप उत्तर भारत में विक्रमी संवत् के आधार पर ही सम्पन्न होते हैं। भारत सरकार भी सरकारी तौर पर शक संवत् को महत्त्व देती है। यह विशेष बात है कि भारत में जब भी संवत्सर का शुभारम्भ हुआ है उसका सम्बन्ध सदैव भारतीय सृष्टि संवत् के साथ ही रहा है।

नये विक्रमी संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। भारतीय शास्त्रीय मान्यता के अनुसार इस दिन से ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ किया था तथा उज्जैन के सम्राट महाराज विक्रमादित्य ने विदेशी आक्रान्ताओं से भारत की धरती को मुक्त करवा कर इसी दिन से नये संवत् विक्रमी संवत् का प्रचलन शुरू किया था। विक्रमी संवत् २०७६ का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (सूर्योदय व्यापिनी) तदनुसार ६ अप्रैल सन् २०१९ शनिवार से हो रहा है। साठ संवतों के चक्र के क्रमशः प्रवर्तन के अनुसार प्रत्येक संवत् का एक नाम होता है। संवत् २०७६ संवत् चक्र का छियालीसवां **परिधावी** नाम का संवत् है। इस संवत् में अन्य कुछ संवत् व्याप्त है, उनका विवरण इस प्रकार से है –

विक्रमी संवत्	**– २०७६ (परिधावी)**
सृष्टि संवत्	**– १,९५,५८,८५,१२० वर्ष**
कलि संवत्	**– ५१२० (५-८-२०१९ से आरम्भ)**
शक-संवत्	**–२०४१-४२**
श्रीकृष्ण जन्म संवत्	**– ५२५५ (प्रा.)**
ईस्वी सन्	**– २०१९-२०**
नानक शाही	**–५५१-५२**

संवत् का सामान्य फलादेश ग्रहों की स्थिति के अनुसार होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के अधिकारी (स्वामी ग्रह) व अन्य घटक विशेष रूप से संवत् फल को प्रभावित करते है। परिधावी संवत् २०७६ के अधिकारी ग्रहों व घटकों का विवरण इस प्रकार से है –

संवत् का राजा	**– शनि**
संवत् का मन्त्री	**– सूर्य**

संवत् का वाहन	**– महिष (भैंसा)**
सस्येश (फसलों का स्वामी)	**– मंगल**
धान्येश (अन्न का स्वामी)	**– चन्द्रमा**
मेघेश (मौसम (वर्षा) का स्वामी	**– शनि**
रसेश (गुड़ आदि रसों का स्वामी)	**– गुरु**
नीरसेश (धातु आदि का स्वामी)	**– मंगल**
धनेश (धन आदि का स्वामी)	**– मंगल**
फलेश	**– शनि**
रोहणी वास	**– धोबी के घर में**
मेघ नाग	**– द्रोण एवं पुष्कर**

राजा शनि : वर्ष प्रतिपदा शुक्ल प्रतिपदा शनिवार को होने के कारण वर्ष का राजा शनि है। शनि के राजा होने पर, शनि के स्वाभावानुसार अत्य-वर्षा, देशों में युद्ध की स्थिति, अराजकता तथा प्रजा में रोग वृद्धि आदि लक्षण पाए जाते हैं तथा निम्न श्लोक शनि के लक्षण बता रहा है –

मन्दस्य राज्ये कृते ततसकृत जलं, प्रभूत रोगैः परिपीड़िताः जनाः।
युद्धं नृपाणां बहु तस्करभयं भ्रमन्तिलोकाः क्षुधया प्रपीड़िताः।। (मेघमाला)

मन्त्री सूर्य : चैत्र संक्रान्ति रविवार को होने के कारण सूर्य को संवत् के मन्त्री का पद प्राप्त है। सूर्य मन्त्री होने के फल के बारे में मेधमाला ग्रन्थ में कहा गया है -–

सूर्ये मन्त्रिगते देवि! पीड़ा भवति दारूणा। प्रचुरं धनधान्यानि विपुपीड़ महद्भयम्।।

अर्थात् सूर्य के मन्त्री होने पर नास्तिकता में वृद्धि, धनधान्य की वृद्धि रस पदार्थ, गुड़चीनी आदि की मंहगाई तथा प्रजाकष्ट होता है।

फसलों का स्वामी मंगल : कर्क–संक्रान्ति का वार सस्येश फसलों का स्वामी होता है। इस का फल है कि पालतू पशुओं में रोगों की वृद्धि, कम वृष्टि तथा गेहूं धान आदि की कम उपज होती है।

धान्येश (अन्न का स्वामी) : चन्द्रमा – धनु संक्रान्ति का वार धान्येश होता है। चन्द्रमा के धान्येश होने पर विभिन्न अन्नों की अच्छी उपज, प्रजा में शुभ कार्य तथा अच्छी वर्षा होती है।

मेघेश (मौसम (वर्षा) का स्वामी : शनि –सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में जिस दिन प्रवेश करे, वह बार-ग्रह ही मेधेश माना जाता है। शनि के मेधेश होने पर कम वर्षा, अन्नादि मंहगाई आदि होते हैं।

रसेश (रसों का स्वामी) : गुरु (बृहस्पति) – तुला संक्रान्ति का बार रसेश होता है। बृहस्पति के रसेश होने पर अच्छी वर्षा, नदियों झीलों के जलस्तर में सुधार, अन्न फलादि की भरपूर उपज, आरोग्य तथा जनकल्याण व शुभ कार्यों में वृद्धि होती है।

धनेश (धन का स्वामी) : मंगल –कन्या संक्रान्ति का बार धनेश माना जाता है। इस वर्ष धनेश मंगल है जिस कारण बाजार में उतार-चढ़ाव, फसलों की बरबादी तथा सरकारी नीतियों से परेशानी रहेगी।

नीरसेश - (धातु आदि का स्वामी) : मंगल– मकर संक्रान्ति का वार नीरसेश होता है। इस वर्ष नीरसेश मंगल होने के कारण लाल रंग की मंहगाई बढ़ेगी व इनका उत्पादन भी प्रभावित होगा।

फलेश (फलों का स्वामी) : शनि –– मीन संक्रान्ति का बार फलेश होता है। इस संवत् में फलेश शनि होने के कारण अधिक हिमपात, फल-फूलों की कमी व रोग आदि की अधिकता रहेगी।

रोहणी वास : वर्ष में वर्षा की स्थिति का ज्ञान रोहिणी वास के आधार पर किया जाता है। इस वर्ष रोहणी का वास-धोबी के घर होने के कारण नदी, तालाब , झीलों आदि में पर्याप्त जल रहेगा। अच्छी वर्षा होगी तथा फल-धान्य की अच्छी पैदावार रहेगी।

संवत् का वाहन महिष (भैंसा) : संवत् के राजा शनि का वाहन भैंसा होने के कारण विषम वर्षा, बाढ़, भूस्खलन व फलों की हानि होगी। प्राकृतिक प्रकोप बढ़ेंगे।

मेघ – द्रोण एवं पुष्कर : इस संवत् में चार मेघों के समूह में द्रोण मेघ व नौ मेघों में से पुष्कर मेघ व्याप्त रहेंगे। द्रोण मेघ व्यापक वर्षा करने वाले व पुष्कर मेघ सामान्य एवं कम वर्षा करने वाले हैं।

ग्रहण विचार – सूर्य व चन्द्रग्रहण खगोल व भूगोल को प्रभावित करते हैं। इस संवत्सर में तीन ग्रहण घटित होंगे –

१. खग्रास सूर्य ग्रहण - २/३ जुलाई २०१९ यह भारत में दिखाई नहीं देगा।

२. खण्ड ग्रास चन्द्र ग्रहण - १६/१७ जुलाई २०१९ - रात्रि १.३१ से ४.३०

३. कंकण सूर्य ग्रहण - २६ दिसम्बर २०१९ - प्रातः ८.०० बजे से १.३०

वर्ष प्रतिपदा – पर्व एवं कृत्य

विभिन्न शास्त्रों में नवंसवत् के उपलक्ष्य में विभिन्न शुभ कृत्यों के करने का विधान है। कुछ एक का विवरण इस प्रकार से है –

१. घर के दरवाजे पर कुंकुम से स्वास्तिक चिन्ह व 'ॐ' अंकित करें।

२. दरवाजे पर आम के पतों की पत्र माला लगायें।

३. घर पर गेरूआ, पीली अथवा लाल पताका (झण्डा) लगायें।

४. चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से चैत्र नवरात्र का आरंभ भी होता है।

५. विद्वान् ब्राह्मण का पूजन करें तथा उसे दक्षिणा सहित पंचांग या अन्य धार्मिक ग्रन्थ दान करें।

६. ब्राह्मण के मुख से वर्ष का फलादेश सुनें।

७. आम की मंजरी, नीम की पत्तियों आदि का सेवन करें।

नवसंवत् की लोक परम्परा – ढोलरू

वर्ष प्रतिपदा का पर्व शास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण पर्व है। लोक परम्परा में भी नवसंवत् पर्व विशेष महत्व रखता है। हिमाचल के कांगड़ा संभाग, जिसमें कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर व ऊना

जिला आते हैं, इसमें नववर्ष के उपलक्ष्य में ढोलरू-गायन की समृद्ध परम्परा प्रचलित है।

ढोलरू शब्द ढोलकी आदि छोटे ढोल का ही कांगड़ी पर्यायवाची है। ढोलरू की ताल के साथ गाया जाने वाला गीत ढोलरू-गीत कहलाता है। नये संवत् के पहले महीने चैत्र का नाम समाज के गाने-बजाने वाले वर्ग जिसे मंगलामुखी या सहनाई मुखी कहा जाता है उनके मुख से जब तक चैत्र महीने का नाम नहीं सुना जाता, तब तक इस महीने का नाम लोग अपने मुख से उच्चारण नहीं करते हैं। अतः इस चैत्र महीने को प्रकारान्तर ''ढोलरूआं दा महीना'' या ''बजदेयां दा महीना'' उच्चारित करने की परम्परा है।

'सहनाई' वादक परिवार के लोग सपत्नीक अपने ढोलरू (ढोलकी) के साथ घर-घर जाकर गीत गाकर चैत्र महीने का नाम सुनाते हैं। सारा क्षेत्र ढोलरू गीतों की मधुर तान से गूंज उठता है। ढोलरू गायक विजय कुमार गांव गुजरेहड़ा जिला - बिलासपुर के सौजन्य से प्राप्त एक ढोलरू गीत के कुछ बोल इस प्रकार से हैं –

आपे ब्रह्मा आपे ता विष्णु
शिवजी दी खेल न्यारी रे।
साधा रे जिन्हां राजे दे पंडितां
शिवजी दा लगन सुधाया रे।
आपे ब्रह्मा आपे ता विष्णु शिव जी खेल न्यारी रे।
साधा रे जिन्हां राजे दी मालणी
फुला दा से हरा गुंध लाया रे
आपे ब्रह्मा आपे ता विष्णु शिव जी खेल न्यारी रे।
गाइये सुनाइये चैत्र महीना सुनी लैण लो का बरेशा रे
आपे ब्रह्मा आपे ता विष्णु.....।

इस ढोलरू गीत में पहले परमेश्वर की स्तुति की जाती है और फिर इस मंगलोचरण के बाद चैत्र महीने का नाम गा कर सुनाया जाता है। नाम सुनने के बाद शक्कर प्रसाद के रूप में बांटी जाती है तथा नाम सुनाने वाले को अनाज, वस्त्र व दक्षिणा आदि की भेंट दी जाती है। यह गायन-परम्परा पूरा महीना चलती रहती है। अनेक भजन व मंगलगीत गाये जाते हैं व मंगलामुखी की ओर से लोगों को नये वर्ष की बधाई दी जाती है। इस प्रकार नव संवत् का पर्व शास्त्रीय-पर्व के साथ-साथ लोक- परम्परा का पर्व भी बन गया है।

प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय
चकमोह, जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

संवीक्षण

जलियांवाला बाग का नरसंहार और उसका परिणाम

प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

तेरह अप्रैल १९१९ को उस समय की ब्रिटिश सरकार ने पंजाब के अमृतसर में जो नरसंहार किया, उसकी पृष्ठभूमि को जानने बूझने के लिए उस समय की राजनैतिक पृष्ठभूमि को समझ बूझ लेना जरूरी है। भारतीयों ने संगठित रूप से अंग्रेजों को देश में से भगाने के लिए १८५७ में पहला प्रयास किया था, जिसे इतिहास में स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहा जाता है। यह संग्राम अंग्रेजों के यहां कब्जा जमा लेने के पूरे सौ साल के बाद किया गया था। १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध में मिली पराजय के कारण भारतीयों में गुलामी को समाप्त करने के लिए नए सिरे से नव उत्साह का निर्माण हो रहा था। अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए भारतीय प्रयास करेंगे ही, ऐसा अनुमान इंग्लैंड में बैठी ब्रिटिश सरकार को भी था ही। इसलिए इस लड़ाई के नियम भी वे खुद बनाना चाहते थे। गोरे जानते थे यदि किसी भी गेम के नियम बना लिए जाएं और दोनों पक्ष उन नियमों के अनुसार गेम खेलते रहें तो अराजकता और लड़ाई की संभावना बहुत ही कम हो जाती है। ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाए गए इन नियमों की परिधि में बहुत सी भारतीय संस्थाएं पनपने लगी, उनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बड़ी संस्था थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना १८८५ में एक अंग्रेज ए.ओ. ह्यूम ने की थी। पार्टी का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार से सहयोग कर, उन्हें सभ्य तरीके से यह समझना था कि भारत का शासन भारतीयों को करने दिया जाए या कम से कम उन्हें सत्ता में कुछ हिस्सेदारी तो दी जाए। यह संस्था ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियमों के अन्तर्गत भारतीयों को दिए गए अधिकारों एवं नियमों के अन्तर्गत कार्य भी करती थी और उन अधिकारों को बढ़ाने के लिए संघर्ष भी करती थी। भारतीयों को प्रशासन में अधिक भागीदारी दी जाए, इसके लिए प्रयास भी करती रहती थी। लेकिन इसके ज्यादातर क्रियाकलाप ब्रिटिश ससंद द्वारा पारित इन अधिनियमों के अन्तर्गत ही होते थे। यदि कांग्रेस को लगता है कि ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कोई अधिनियम भारतीयों से अन्याय करता है तो वह उस अधिनियम में संसोधन करवाने या उसे निरस्त करवाने के लिए संघर्ष भी करती थी। यदि इसकी ब्रिटिश संवैधानिक शब्दावली में ही व्याख्या करनी हो तो कहा जा सकता है कि उस समय की ब्रिटिश सरकार Her majesty's government थीं और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस Her Majesty's opposition थी। यही कारण था कि कांग्रेस द्वारा तात्कालिक सरकार के खिलाफ लाए जा रहे आन्दोलन को संवैधानिक आन्दोलन या संघर्ष कहा जाता था। पार्टी ब्रिटिश सरकार को ज्ञापन देती थी व पत्र व्यवहार इत्यादि करती रहती थी। ब्रिटिश सरकार के अधिकारी और कांग्रेस के पदाधिकारी आपस में बैठकें किया करते थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित अधिनियमों के दायरे में रहकर ही

कांग्रेस आन्दोलन चलाती थी, इसलिए गदर पार्टी के प्रधान सोहन सिंह भकना ने इसे Pen and ink वाली पार्टी कहा था।

दूसरी ओर ऐसे भारतीय भी थे जिन्होंने Her Majesty को ही मान्यता नहीं दी थी। उनका मानना था कि भारत में ब्रिटिश सरकार किसी अधिनियम या संविधान के अधिकार से स्थापित नहीं हुई है। इस सरकार की स्थापना विशुद्ध ताकत के बल पर हुई है, जिसे राजनीति विज्ञान में पशुबल भी कहा जाता है। अर्थात् यह सरकार बदूंक के आधार पर स्थापित हुई है। इसलिए इसे उखाड़ने के लिए भी बल का प्रयोग ही किया जाना चाहिए। ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियमों के माध्यम से सत्ता में आंशिक भागीदारी के लिए संघर्ष करते रहना परोक्ष रूप में भारत में ब्रिटिश सरकार को मान्यता देना ही नहीं है बल्कि उनके जाल में जानबूझकर फंसना भी है। ये भारतीय आम जनता की नजर में क्रान्तिकारी कहलाते थे लेकिन ब्रिटिश सरकार की शब्दावली में वे अराजकतावादी कहे जाते थे। आम भाषा में इसका अर्थ यह था कि इन भारतीयों ने भारत में ब्रिटिश सरकार को मान्यता ही नहीं दी थी। बंगाल और पंजाब में क्रान्ति की भावना ज्यादा पनपती जा रही थी। अंग्रेजों ने पंजाब पर कब्जा जमा लेने के बाद पंजाब के सांस्कृतिक तथा सामाजिक संस्थानों पर अपना शिंकजा कसना शुरू कर दिया था। पंजाब क्षेत्र के कुछ राजाओं ने १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता के बाद यह प्रचारित करना शुरू किया कि सिखों ने इस संग्राम में अंग्रेज सरकार का साथ दिया था। यह पंजाब के एक समुदाय को नकारात्मक चित्रित करने की गहरी चाल थी। क्योंकि इस स्वतन्त्रता संग्राम में देश के अनेक हिन्दू राजाओं ने भी अंग्रेज सरकार का साथ दिया था। लेकिन अंग्रेज सरकार ने उसकी व्याख्या कभी भी यह कहकर नहीं की कि हिन्दुओं ने अंग्रेजों का साथ दिया था। इसके विपरीत पंजाब के कुछ राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया तो उसकी व्याख्या यह कह कर की कि सिखों ने अंग्रेजों का साथ दिया। इसी प्रकार अंग्रेज सरकार ने गुरुद्वारों में अपने समर्थक लोगों को बिठाना शुरू कर दिया या फिर जिन लोगों का गुरुद्वारों पर नियन्त्रण था, उनको अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लिया था। दक्षिण भारत में अंग्रेज सरकार ने वर्षों पहले कब्जा कर लिया था, अब यही प्रयास पंजाब में भी हो रहा था। दश गुरु परम्परा के गुरुओं के द्वारा निर्मित ऐतिहासिक गुरुधामों पर अंग्रेज सरकार का साथ देने वाले पिट्ठू जमाए जा रहे थे। इससे पंजाब के ग्रामीण भागों में तो गहरा आक्रोश था तथा इस कारण पंजाब में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बहुत असंतोष और गुस्सा था। अतः भारतीयों में ब्रिटिश सरकार से संवैधानिक तरीके से लड़ने की बजाए क्रान्तिकारी तरीके से लड़ने की भावना बल पकड़ती जा रही थी।

इस प्रकार के क्रान्तिकारी भारतीयों ने कांग्रेस की स्थापना के ठीक २८ वर्ष बाद अमेरिका के सैनफ्रांसिसको में १९१३ में हिन्दोस्तान गदर पार्टी की स्थापना की, जिसके प्रधान सोहन सिंह भकना थे। इसमें अनेक प्रदेशों के लोग थे लेकिन ज्यादातर लोग पश्चिमोत्तर भारत के ही थे। पंजाब के लोगों की इसमें प्रमुखता थी। गदर पार्टी का ध्येय भारत की आजादी था लेकिन उनकी भारतीय राष्ट्रीय

कांग्रेस की तरह ब्रिटिश सरकार से सहयोग कर संवैधानिक लड़ाई लड़ने में रुचि नहीं थी बल्कि वे ब्रिटिश सरकार की शक्ति का उत्तर गोली से ही देना चाहते थे। पत्थर का जबाव पत्थर। गदर पार्टी ने गदर नाम से ही अपना अखबार भी निकाला। इसके पहले ही अंक में सोहन सिंह भकना ने पार्टी का उद्देश्य स्पष्ट किया। ''आज से इस विदेशी धरती पर गदर शुरू हो गया है। शुरु चाहे यह विदेशी धरती पर हुआ है लेकिन अपने देश की जुबान में शुरू हुआ है। यह ब्रिटिश राज के खिलाफ युद्ध की घोषणा है। हमारा नाम क्या है? गदर। हमारा काम क्या है? गदर। क्रान्ति कहां होगी? भारत में। जल्दी ही वह समय आने वाला है जब कलम और स्याही का स्थान राइफल और खून ले लेगा।'' भकना के इस स्पष्टीकरण की पृष्ठभूमि जानना जरूरी है। कांग्रेस पार्टी की स्थापना एक अंग्रेज ने भारत में की और गदर पार्टी की स्थापना एक भारतीय ने अमेरिका में की। हिन्दोस्तान गदर पार्टी की जरूरत को और स्पष्ट करते हुए गदर अखबार ने लिखा, 'शूरवीरो! आप केसरी वस्त्र धारण कर लो और सांसारिक लोभों को छोड़ कर अंग्रेजों से युद्ध प्रारम्भ कर दो। शौर्य की आग में अपने भय को राख कर दो। गुलामी की पोशाक उतार फैंको। शौर्य की जलधारा में स्नान कर सदियों से जमी गई मैल को धो डालो। केसरी वस्त्र धारण कर अपने प्राण स्वतन्त्रता की देवी के मन्दिर में भेंट कर दो।' कांग्रेस और हिन्दुस्तान गदर पार्टी में एक और भी अन्तर था जिसे भकना ने स्पष्ट करते हुए लिखा, 'The time will soon come when rifles and blood will take the place of pen and ink' और वह समय जल्दी ही आ गया। १९१५ के आते-आते गदर पार्टी के लोग भारत में आकर उसी आन्दोलन में जुट गए जिसका संकेत भकना ने किया था। पंजाब इनकी गतिविधियों का सबसे सक्रिय केन्द्र बन गया। प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१९१८) के दिन थे। भारत में भी असंतोष की चिनगारियां उठने लगीं थी।

ब्रिटिश सरकार को लगने लगा, भारत में एक ऐसी पार्टी ने जन्म ले लिया है जो ब्रिटिश सरकार को उन्हीं तरीकों से भारत से निकालना चाहती हैं, जिन तरीकों से अंग्रेजों ने यहां कब्जा जमाया था। भारत में अंग्रेजों ने भी बंदूक के बल पर ही कब्जा जमाया था, यह अलग बात है कि उन्होंने बंदूक का लाभ उठाने के लिए भारत में पहले से ही जमे हुए मध्य एशियाई कबीलों के शासकों की आपसी फूट का प्रयोग किया। भारतीयों के असंतोष की अभिव्यक्ति के लिए ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रशासन में पहले से ही कांग्रेस के रूप में सेफ्टी बाल्ब लगा रखा था। लेकिन यह नई पार्टी भारतीयों के अधिकार ब्रिटिश सरकार से सहयोग के माध्यम से नहीं बल्कि अपनी शक्ति के बल पर छीनना चाहती थी। ब्रिटिश सरकार को ऐसे प्रमाण भी मिले थे कि अमेरिका, जर्मनी और भारत में फैले हुए क्रान्तिकारियों ने १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम की तर्ज पर, सेना में बगाबत की योजना बना ली थी। फरवरी १९१५ को भारतीय सेना में बगावत की योजना बन चुकी थी, ऐसी जानकारी ब्रिटिश सरकार को गदर क्रान्तिकारियों में से ही कुछ काली भेड़ों से मिल चुकी थी। सरकार ने चाहे यह योजना विफल कर दी और योजनाकार क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर लिया लेकिन शासन के मन में यह भय बना रहा कि हो सकता है कुछ सूत्रधार बच गए हों और सेना में बगाबत हो जाए, ऐसी किसी भी स्थिति से निटपने के लिए ब्रिटेन ने भारत सुरक्षा अधिनियम १९१५ तैयार कर लिया। पंजाब का

लैफ्टीनैंट गवर्नर माईकल ओ डायर इस प्रकार के तानाशाही प्रावधानों का सबसे बड़ा हिमायती था। ब्रिटिश सरकार ने एक ब्रिटिश जज सिडनी रौलट को कहा कि वह भारत के क्रान्तिकारियों की जर्मन और रूस में जड़ों की तलाश करें और उससे निपटने के लिए अपने सुझाव भी दे।

सिडनी रौलट की रपट के बाद ब्रिटिश सरकार ने गदर पार्टी की गतिविधियों का उत्तर Anarchical and Revolutionary Crimes Act (ARC) से दिया, जिसे इसके प्रारूपकार सिडनी रौलट के नाम पर Rowlatt Act 1919 भी कहा जाता था। वह अधिनियम ब्रिटिश सरकार द्वारा इसी वर्ष १९१९ में पारित किया गया था। दरअसल प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद भारत सुरक्षा अधिनियम १९१५ समाप्त हो गया था। क्रान्तिकारी भारतीय संगठनों को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार बंदूक का ही प्रयोग करती थी। लेकिन इस प्रक्रिया में ब्रिटिश सरकार दुनिया की नजर में अपने आपको सभ्य बनाए रखने के लिए गोली चलाने के लिए भी एक अधिनियम बनाना चाहती थी जिसमें अपने पास भारतीयों पर गोली चलाने का अधिकार सुरक्षित हो सके। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार को लगता था कि भारतीयों का झुकाव तथाकथित संवैधानिक आन्दोलन के बजाए, ब्रिटिश सरकार को ही अमान्य करने की ओर बढ़ेगा इसलिए इस आन्दोलन को दबाने के लिए Anarchical and revolutionary crimes act पारित किया गया। इस अधिनियम में सरकार ने देश के क्रान्तिकारियों से निपटने के लिए अमानुषिक प्रावधानों का सहारा लिया। इसके माध्यम से प्रेस पर नियन्त्रण, बिना वारंट के गिरफ्तार करने का अधिकार, बिना ट्रायल के असीमित समय तक बंदी बनाए रखने का अधिकार, क्रान्तिकारियों पर गुप्त स्थान पर ट्रायल करने का अधिकार, तथाकथित, अभियुक्त को अभियुक्तों का नाम न बताना और न ही उसके खिलाफ प्रयुक्त किए जाने वाले साक्ष्यों को जानने का अधिकार, इस अधिनियम में सजायाफ्ता लोगों को जीवन भर के लिए किसी प्रकार की भी राजनैतिक, शैक्षिक व धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने से वंचित करने के प्रावधान थे।

उधर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर भी अब तक महात्मा गांधी के हाथ आ चुकी थी, जो १९१५ में दक्षिणी अफ्रीका से वापिस भारत आ गए थे। उनकी योजना में स्वतन्त्रता संग्राम में जन भागीदारी बढ़ाने की ही नहीं थी बल्कि सरकार से असहयोग करने की भी थी। लेकिन वे असहयोग के उन तरीकों की तलाश में रहते थे जिनमें आम जनता की भागीदारी सर्वाधिक सुनिश्चित की जा सके। उनका मत था कि आम जनता उन्हीं गतिविधियों में ज्यादा खुल कर भाग लेती है जिनमें हिंसा की संभावना कम हो। ARC अधिनियम को कांग्रेस ने भी काला कानून घोषित कर दिया। महात्मा गांधी ने इस अधिनियम के खिलाफ देश भर में असहयोग आन्दोलन चलाने की घोषणा कर दी। इसके लिए छह अप्रैल को देश भर में हड़ताल करने की घोषणा कर दी गई। महात्मा गांधी ने यह भी कहा कि हड़ताल पूर्ण तौर पर अहिंसक रहेगी ताकि उसमें सर्वाधिक जन भागीदारी हो। महात्मा गांधी के आह्वान पर देश भर में रौलट एक्ट के विरोध में प्रदर्शन शुरू हो गए। पंजाब में तो स्थिति नियंत्रण से

बाहर होने लगी। रेल यातायात, टेलीग्राफ और संचार साधन ठप्प होने लगे। अप्रैल मास के प्रथम सप्ताह मानों सारा पंजाब ठप्प हो गया हो। लाहौर ब्रिटिश विरोधी नारों से गूंज रहा था। छह अप्रैल की हड़ताल पर टिप्पणी करते हुए 'ट्रिब्यून' ने जो उस समय लाहौर से प्रकाशित होता था, अपने आठ अप्रैल के अंक में लिखा, ''If the national protest day under the advice of Mahatma Gandhi was celebrated throughout the country, we doubt if it was observed with more completeness or greater earnestness anywhere else than it was in the Punjab. A report of the Unique and unprecedented demonstration of grief and protest in lahore itself will be found elsewhere. Similar demonstrations were held in Amritsar, Multan, Gujranwala, Sialkot, Rawalpindi, Jalandhar and other places. Only a few of the reports received can appear to day; the rest have to be held over owing to the pressure on our space. What we are able to give to day should, however, suffice to give an idea of the universal and emphatic protest against the Rowlatt Act."

माइकल ओ डायर को इसमें १८५७ की आजादी की पहली लड़ाई की गंध आ रही थी। पश्चिमोत्तर भारत में इस अधिनियम का विरोध बहुत ज्यादा हो रहा था। इधर छह अप्रैल की हड़ताल की घोषणा से तनाव और बढ़ गया। सरकार ने अमृतसर में सत्याग्रह के दो प्रतिष्ठित नेताओं, सत्यापाल और सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट के तहत गिरफ्तार कर लिया और उन्हें वर्तमान हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला की जेल में भेज दिया गया, जिसके कारण लोगों में बहुत ज्यादा आक्रोश था। पूरा भारत तप रहा था। पंजाब में स्थिति यह थी कि एक ही चिन्गारी पर्याप्त थी। अमृतसर की स्थिति भी बहुत उत्तेजक थी। १० अप्रैल १९१९ को लोगों ने इसके विरोध में जिलाधीश के घर के बाहर प्रदर्शन किया। सैनिकों ने निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर गोली चला दी, जिससे कुछ प्रदर्शनकारी शहीद हो गए। गुस्साए लोगों ने ब्रिटिश शासन के प्रतीकों, शासकीय कार्यालयों पर हमले किए। ११ अप्रैल को अंग्रेज मिशनरी Marcella sherwood, जो चर्च के किसी स्कूल में पढ़ाती भी थी, की क्रूजा कोछडां में पिटाई कर दी। लेकिन कुछ स्थानीय लोगों ने उसे भीड़ से बचा लिया और उसे खतरे को भांपते हुए गोविन्द गढ़ किले में सुरक्षित पहुंचा दिया। अगले दिन १२ अप्रैल को सत्याग्रह आन्दोलन से जुड़े हुए कुछ प्रमुख लोगों की बैठक अमृतसर के हिन्दू कॉलेज में हुई। उसमें यह निर्णय लिया गया कि अगले दिन १३ अप्रैल को वैशाखी के दिन जलियांवाला बाग में जनसभा होगी। A series of resolutions protesting against the Rowlatt Act, the recent actions of the British authorities and the detention of Satyapal and Kitchlew was drawn up and approved, after which the meeting adjourned.

भारतीय पंचांग में वैशाख मास पवित्र माना जाता है। लोग नदियों में स्नान करते हैं। वैशाख पर्व या वैशाखी सर्वत्र अत्यन्त उत्साह से मनाई जाती है। नये वर्ष की शुरुआत भी वैशाख के प्रथम दिन से ही की जाती है। पश्चिमोत्तर भारत में वैशाख मास की एक अतिरिक्त महत्ता भी है। इसी मास

में दशगुरु परम्परा के दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने शिवालिक की उपत्यकाओं में माखोबाल, जो अब आनन्दपुर के नाम से विख्यात है, में एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुला कर खालसा पंथ की स्थापना की थी। इसी खालसा पंथ ने महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में पूरे पश्चिमोत्तर भारत को मुगल-अफगानों के विदेशी राज्य से मुक्त किया था। महाराजा रणजीत सिंह के स्वर्गवास हो जाने के बाद पश्चिमोत्तर भारत पर भी अंग्रेजों ने अपना कब्जा जमा लिया था और अब अंग्रेजों को उन्हीं की भाषा में उत्तर देने की तैयारी हो रही थी। उन दिनों भारत का वायसराय Lord Chelmsford था। Edwin Montagu लंदन में भारत सचिव था। पंजाब का लेफ्टिनेंट गवर्नर Sir Michael O Dwyer था। जालन्धर में आर ई. एच डायर (R.E.H. Dyer) (कमांडर ४५वीं इन्फैंटरी ब्रिगेड) ब्रिगेडियर जनरल था। अमृतसर में तनाव और गुस्से को देखते हुए प्रशासन ने ब्रिगेडियर जनरल आर ई एच डायर को वहां बुला लिया था। ब्रिगेडियर जनरल आर ई एच डायर (R.E.H. Dyer)(कमांडर ४५वीं इन्फैंटरी ब्रिगेड) ११ अप्रैल की शाम को जालन्धर से अमृतसर पहुंचा। उसने आते ही एक प्रकार से पूरे प्रशासन को अपने कब्जे में ले लिया।

उधर अमृतसर में वैशाखी के उत्सव का परम्परागत उत्साह तो था ही, इस बार इस राजनैतिक उथल पुथल से वातावरण और भी गरमा गया था। शासन ने अमृतसर में वैशाखी के अवसर पर किसी प्रकार के भी एकत्रित होने को प्रतिबन्धित कर दिया लेकिन इस निर्णय का प्रचार नहीं किया। सरकार किसी भी सार्वजनिक स्थान पर वैशाखी की सभा करने की अनुमति नहीं दे रही थी। तब तक निजी स्थान का चयन इस सभा के लिए किया गया। स्वर्ण मन्दिर के पास ही लगभग छह सात एकड़ का एक बहुत बड़ा मैदान था जो जलियांवाला बाग के नाम से प्रसिद्ध था। वैशाखी के पर्व पर अमृतसर में जो भी आएगा वह स्वर्ण मन्दिर में आकर सरोवर में स्नान तो अवश्य करेगा। फतहगढ़ साहिब के किसी हिम्मत सिंह को महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में यह जमीन जागीर के तौर पर मिली थी। हिम्मत सिंह का परिवार फतहगढ़ साहिब जिला के किसी जल्लावाला गांव का रहने वाला था। इसलिए इस बाग का नाम भी जल्लियांवालों का बाग प्रसिद्ध हो गया, जो समय के अनुसार जल्लियांवाला बाग कहा जाने लगा। इस बाग के मालिक को यहां सभा करने पर कोई एतराज नहीं था। बाग के मालिकों को जब कोई आपत्ति नहीं थी तो सरकार उसमें कानूनी तौर पर अड़गा नहीं डाल सकती थी। इसलिए वैशाखी पर्व की सभा करने के लिए जल्लियांवाला बाग से उपयुक्त स्थान और क्या हो सकता था? लेकिन यह मैदान चारों ओर से मकानों से घिरा हुआ था। बाग में जाने का केवल एक छोटा सा संकरा रास्ता बचा हुआ था। यह कभी बाग भी रहा होगा। लेकिन उस समय यह खाली मैदान था जो लोगों की गप्पबाजी का अड्डा था। जलियांवाला बाग में वैशाखी पर्व की तैयारियां शुरू हो गई। ऐसा नहीं कि आम लोगों को अंग्रेजों की नीचता का पता नहीं था। अमृतसर में उसका नंगा नाच कई दिनों से हो ही रहा था। लेकिन लोग इस बार केसरिया बाना पहन कर मानों शहादत देने के लिए ही निकले थे। देखना है जोर कितना बाजुए कालित में है। विदेशी शासक अपनी क्रूरता में किसी भी सीमा तक जा सकते थे। पंजाब में अब राज महाराजा रणजीत सिंह का नहीं था बल्कि इंग्लैंड

के डायरों का था।

श्रद्धालु सुबह से ही बाग में जुटने शुरू हो गए थे। साढ़े चार बजे तक पन्द्रह से बीस हजार के लगभग लोग जलियांवाला बाग में एकत्रित हो चुके थे। चारों ओर नर मुंड ही दिखाई दे रहे थे। मिट्टी के एक ऊंचे टीले पर खड़े होकर जनता को सम्बोधित करने की व्यवस्था की गई थी। सभा शुरू हो चुकी थी। दो प्रस्ताव पारित किए जा चुके थे। तीसरे प्रस्ताव पर चर्चा शुरू हुई थी। यह प्रस्ताव था कि ब्रिटिश सरकार भारत में अपनी दमन की नीति को बदले। लेकिन तब तक ब्रिटिश सरकार की दमन की नीति का नंगा प्रदर्शन करने के लिए डायर जलियांवाला बाग के मुहाने पर हथियारबन्द फौज लेकर पहुंच चुका था। पूरे पांच बज कर पन्द्रह मिनट पर जनरल डायर पचास राइफलमैन और मशीनगन से लदी दो गाड़ियां लेकर बाग के मुख्य प्रवेश द्वार पर आ डटा। प्रवेश द्वार पर उसने अपने राइफलमैन तैनात किए। उसकी इच्छा मशीनगन भी प्रवेश द्वार पर लाने की थी लेकिन द्वार इतना तंग था कि गाड़ी अन्दर नहीं जा सकती थी। बिना किसी चेतावनी के डायर की सेना ने वहां उपस्थित श्रद्धालुओं पर गोलीबारी शुरू कर दी। गोलियां उन दिशाओं में चलाई जा रही थी, जहां के संकरे रास्तों से लोग निकलने की कोशिश कर रहे थे। अनुमान किया जाता है कि १६५० से भी ज्यादा राउंड फायर किए गए। अंग्रेज सरकार ने जो स्वयं आधिकारिक आंकड़े जारी किए उसके अनुसार ३७९ लोग शहीद हुए और ११०० घायल हुए। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा की गई जांच के अनुसार एक हजार से भी ज्यादा श्रद्धालु शहीद हुए और पन्द्रह सौ से भी ज्यादा घायल हुए थे। बाग के अन्दर एक कुंआ था, उसी में से १२० से भी ज्यादा लाशें निकाली गईं। इन कुकृत्यों से ब्रिटेन सरकार का अमानवीय और साम्राज्यवादी विकृत चेहरा नंगा हो गया। इस नरसंहार के बाद डायर ने पंजाब के लैफ्टीनेंट गवर्नर ओ डायर को सूचित किया, ''मेरा सामना एक क्रान्तिकारी सेना से था।'' लेफ्टीनेंट गवर्नर ओ डायर ने उतर दिया, ''तुमने जो किया बिल्कुल ठीक किया। मैं इसका समर्थन करता हूं'' और लैफ्टीनेंट गवर्नर ने वायसराय को लिखा कि अब इस नरंसहार के बाद मार्शल ला की अनुमति दी जाए और वायसराय ने अनुमति दे दी। मार्शल ला के बाद अमृतसर निवासियों पर जो अमानुषिक अत्याचार हुए, उसने गोरों की साम्राज्यवादी चेतना और अमानवीय मानसिकता का पर्दाफाश कर दिया। जिस गली में किसी मिशनरी चर्च की एक अंग्रेज औरत के साथ लोगों ने दुर्व्यवहार किया था लेकिन बाद में वहीं के लोगों ने उसे भीड़ से छुड़ा कर सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया था, उस गली में सभी हिन्दुस्तानियों को रेंग कर चलने के लिए विवश किया गया ताकि उनको पता चले कि एक अंग्रेज औरत की कीमत तुम्हारे देवी देवताओं से भी ज्यादा है या जिनके आगे तुम रेंगते हो। शहर में कर्फ्यू होने के कारण जलियांवाला बाग में कराह रहे घायलों को अस्पताल नहीं पहुंचाया जा सका जिसके कारण उन्होंने वहीं तड़पते हुए दम तोड़ दिया।

भारत में दोनों डायर राक्षसी खलनायक बन कर उभरे, लेकिन उधर इंग्लैंड में वह वहां की जनता का नायक बन गया। सर्वत्र उसकी वीरता के गीत गाए जाने लगे। इंग्लैंड के हाउस ऑफ लार्डज ने डायर के इस कुकृत्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। इंग्लैंड विश्व भर में अपनी पाश्विकता पर गर्व से

नाच रहा था। इंग्लैण्ड का यह नंगा नाच और उससे भी बढ़कर उस पर अभिमान का प्रदर्शन इतना बेहयाई से भरा था कि उससे उन भारतीयों को भी लज्जा आने लगी थी जो अभी तक ब्रिटिश सभ्यता के गीत गा रहे थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो इतने आहत हुए कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा दी जाने वाली Knighthood की उपाधि लेने से इंकार करते हुए कहा, ''इस प्रकार का नरसंहार करने वाले किसी को कोई उपाधि देने के योग्य नहीं है।'' इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने अपना चेहरा छुपाने की कोशिश शुरु की और अपनी रणनीति बदली। ब्रिटिश संसद के हाउस आफ कामनज ने डायर की थोड़ी निन्दा की, उसके पद को कम किया गया और उसे तुरन्त भारत से बाहर रखने की योजना बनाई। लेकिन अब तक असली ब्रिटेन और उसकी सभ्यता-संस्कृति का असली चेहरा सभी के सामने आ चुका था।

पूरे तीन साल बाद मार्च १९२२ को ब्रिटिश सरकार ने रौलट एक्ट को वापिस ले लिया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। जलियांवाला बाग में जब शान्तिप्रिय जनता पर डायर की सेना गोलियों की बौछार कर रही थी तो उस भीड़ में एक युवा उधम सिंह भी था जिसने यह सारा नरसंहार अपनी आंखों से देखा था। उधम सिंह और उसके मित्र बाग में श्रद्धालुओं को पानी पिला रहे थे। उधम सिंह डायर की गोलियों से तो बच गया परन्तु इस राक्षसीय क्रूरता ने उसकी चेतना को घायल कर दिया। वह ठीक से सो नहीं सकता था। उसे स्वप्न में भी चलती गोलियां और गिरते इन्सान ही दिखाई देते थे। उसने जलियांवाला नरसंहार का बदला लेने का निर्णय कर लिया। जनरल डायर इंग्लैंड वापिस जा चुका था। वहां १९२७ में उसकी स्वभाविक मौत भी हो चुकी थी। लेकिन माईकल ओ डायर अभी जिन्दा था और लन्दन में रह रहा था। ऐसा माना जाता है कि जलियांवाला नरसंहार की योजना बनाने वाला यही था और जनरल डायर तो उसको क्रियान्वित करने वाला था। इसलिए इस नरसंहार के लिए दोनों बराबर के दोषी थे। उधम सिंह ने नरसंहार के दोषियों को सजा देने की प्रतिज्ञा की और इस काम को अजांम देने के लिए वह १९३४ में लंदन चला गया। वह किसी उचित अवसर की प्रतीक्षा में रहता था और वह दिन आया १३ मार्च १९४० को। उसे पता चला कि जलियांवाला नरसंहार के समय पंजाब के गवर्नर जनरल रहे माईकिल ओ डायर लंदन के कैक्सटन हाल में सेण्ट्रल एशियन सोसायटी की एक सभा में मुख्य वक्ता के तौर पर आने वाले हैं। उधम सिंह वहां श्रोता के रूप में पहुंच गए। जब ओ डायर ने अपना भाषण पूरा कर लिया तो उधम सिंह ने दो गोलियों से डायर को ढेर कर दिया। कुछ दूसरे गोरे भी घायल हुए। हिन्दुस्तान में उधम सिंह के इस वीरोचित कार्य पर खुशियां मनाई गई, लेकिन इंग्लैंड में सन्नाटा छा गया। लेकिन महात्मा गांधी ने कहा, ''The outrage has caused me deep pain. I regard it as an act of insanity... I Hope this will not be allowed to affect political Judgement.'' पंडित नेहरू की चिन्ता दूसरी थी। उनको डर था कि कहीं उधम सिंह के इस कार्य से ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस के सम्बन्ध न बिगड़ जाएं और कांग्रेस जो सत्ता प्राप्ति के नजदीक पहुंच गई लगती थी, उसमें कहीं बाधा न पड़ जाए। इसलिए उन्होंने नैशनल हैराल्ड अखबार में स्पष्टीकरण देते हुए लिखा, ''The Assassination is regretted but it is earnestly hoped that it

will not have far reaching repercussions on [the] political future of India."

उधम सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और उस पर मुकद्दमा चलाया गया। मुकद्दमे के दौरान उधम सिंह ने कहा, **''मैंने उसकी हत्या इसलिए की है क्योंकि उसके खिलाफ मुझे Grudge था। वह इसी प्रकार की सजा का हकदार था। वह जलियांवाला नरसंहार का असली अपराधी था। वह मेरे देशवासियों की आत्मा को कुचल देना चाहता था इसलिए मैंने उसे ही कुचल दिया। उससे बदला लेने के लिए मैं पूरे इक्कीस साल तक इंतजार करता रहा हूं। अब मैं खुश हूं कि मैंने अपना काम कर दिया है। मैं मौत से नहीं डरता। मैं अपने देश के लिए मर रहा हूं। मैंने अंग्रेजी राज में अपने देशवासियों को भूख से तड़प-तड़प कर मरते देखा है। मैंने ब्रिटिश साम्राज्य की मुखालफत की है। यह मेरा कर्तव्य था। अपनी मातृभूमि की सेवा करने के कारण मुझे फांसी हो, मेरे लिए इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है?''** उधर सिंह को फांसी की सजा सुनाई गई। सजा सुनने पर उधम सिंह ने वक्तव्य दिया जिसे न्यायाधीश ने प्रेस में जाने से रोक दिया। उसे ३१ जुलाई १९४० को लंदन की Pentonvlle जेल में फांसी दे दी गई। उधम सिंह की अस्थियों का कुछ भाग अभी भी जलियांवाला बाग में धरोहर के रूप में सुरक्षित रखा हुआ है।

कुलपति, केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

मार्तण्ड-कश्मीर के सूर्य मन्दिर का पुरातात्त्विक अध्ययन

डॉ. सतीश गंजू[1]
बनीता रानी[2]

कश्मीर में कई प्राचीन भव्य मन्दिर हमें देखने को मिलते हैं। जिनमें से 'मार्तण्ड सूर्य मन्दिर' का महत्त्व पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष है। यह कश्मीर के अनन्तनाग जो पहलगांव के रास्ते पर स्थित है, से कुछ ही दूरी पर 'मट्टन' नामक स्थान पर स्थित है। सूर्य मन्दिर अपनी भव्यता के लिए विश्व प्रसिद्ध है जिसे कि 'कश्मीर का साईक्लोप्स' भी कहा जा सकता है। इसमें भारतवर्ष के पुराकालीन भारतीय वास्तु, मूर्ति एवं भास्कर कला का विशिष्ट स्थान है। कुछ विद्वानों ने मिस्र के स्थापत्यता और यूनानी स्थापत्य के लालित्य का मिश्रण भारत के प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर में ढूंढने का प्रयास किया है।[1] परन्तु सूर्य मन्दिर की सजीवता एवं धार्मिक आस्था के समक्ष मिस्र और यूनानी स्थापत्य इसके समक्ष फीकी पड़ जाती है। एलेग्जेंडर कनिंघम ने इस विशालमन्दिर के बारे में लिखा है कि पूरा परिसर एक छोटे से 'करेवा' के ऊपर बनाया गया है। कश्मीर के स्थानीय ब्राह्मण इस विशाल परिसर को 'पांडव लारी' की संज्ञा देते है जिसका अर्थ है पांडवो का घर। लेकिन कनिंघम ने इस विचार का समर्थन नहीं किया। उन्होंने तर्क रखा है कि यह एक विशाल मन्दिर रहा है और इसका कभी भी प्रयोग रहने के लिए घर के रूप में नहीं किया गया।[2]

सर्वसाधारण जन इसे मट्टन कहते हैं। किन्तु 'मट्टन' संस्कृत शब्द मार्तण्ड का ही अपभ्रंश है। कई लोगों का विचार है कि इस मन्दिर का निर्माण मछली पालन के व्यवसाय से सम्बन्धित लोगों द्वारा किया गया है।[3] मार्तण्ड का प्रथम मन्दिर राजा रनादित्य ने निर्मित किया था। जिसे रणपुर स्वामी नामक मन्दिर के नाम से जाना जाता है। राजा रनादित्य की रानी अमृतप्रभा ने अमृतेश्वर नामक मन्दिर की स्थापना की थी। जोकि रणपुर स्वामी के मन्दिर के दक्षिण में स्थित है।[4] डॉ. रघुनाथ सिंह ने जोनराज कृत राजतरंगिनी में वर्णित किया है कि रणपुर स्वामी नामक शिव मन्दिर की स्थापना राजा रनादित्य ने की थी जिसका प्रमाण मन्दिर के प्रथम मंच तक जाता है तत्पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड़ ने इसका आठवीं शताब्दी में जीर्णोदार कर दूसरा मंच तथा मन्दिर बनाया। तत्पश्चात् श्री वर्मा ने सूर्य मूर्ति की स्थापना की।[5]

स्थापत्य कला

मार्तण्ड मन्दिर का स्थापत्य कश्मीरी हिन्दू कला प्रदर्शित करता है। इस मन्दिर के निर्माण में नीले रंग के चूना पत्थर का इस्तेमाल किया गया है। प्राचीन हिन्दू मन्दिरों राजमहलों में चूना पत्थर तथा उड़द दाल के मिश्रण को उसकी मजबूती एवं चमक के लिए प्रयोग किया जाता था। पुरातत्त्व विभाग आज भी प्राचीन धरोहरों के संरक्षण के लिए इस मिश्रण का प्रयोग करते है। कश्मीर के अन्य

मन्दिरों जैसे कि शंकराचार्य मन्दिर (श्रीनगर) का निर्माण भी चूना पत्थर से ही किया गया है।[६]

मार्तण्ड मन्दिर में कश्मीरी हिन्दू कला शैली के साथ गंधार शैली भी मुस्कराती है। उत्तर गुप्तकालीन भास्कर्य एवं मूर्तिकला की प्रगति गंधार शैली से अछूती नहीं है। उसने कश्मीर में आगे चलकर बनने वाले सभी मन्दिरों के लिए प्रतिकृति का कार्य किया है।[७]

इस मन्दिर की परिकल्पना शैली निराली है, जिसे समझने के लिए ज्योतिष का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। जिसे नक्षत्र, राशि एवं सौरमंडल का ज्ञान नहीं है, उन्हें इस मन्दिर की परिकल्पना के वास्तविक दर्शन को समझने में कठिनाई होगी। मन्दिर में ८४ स्तम्भ है। वर्ष में १२ मास होते हैं और एक सप्ताह में ७ दिन होते है, वर्ष में १२ मास और ७ दिन को गुणा करने पर ८४ आता है। अर्थात् ८४ को हिन्दुओं की धार्मिक आस्था से जोड़ा गया है। हिन्दू मान्यता में ८४ अंक का बड़ा महत्त्व है। सब जीवधारियों में मनुष्य ही ऐसा जीव है जो अपने मस्तिष्क, वाणी तथा बल का समुचित प्रयोग करता है। इसलिए यह सर्व मान्यता है कि मनुष्य जीवन ८४ लाख योनियों में जन्म लेने के बाद ही अपने सतकर्म के फलस्वरूप ही मनुष्य जन्म हो पाता है।

मन्दिर की स्तम्भावली

प्रस्तुत मन्दिर के प्रांगण में तीन प्रवेश द्वार है। मुख्य द्वार अनन्तनाग की दिशा में पश्चिम की ओर है। द्वार आयताकार है। उसमें पत्थर के भोट (सम्पूर्ण बृहिदाकार) ६ तथा ८ फुट और एक ९ फुट लम्बा लगा है। निश्चित ही वर्तमान युग के इंजिनियरों के सम्मुख यह समस्या उपस्थित है कि किस प्रकार इतने भारी पत्थरों को आधुनिक क्रेनों के अभाव में एक के ऊपर दूसरा पत्थर किस शक्ति और तकनीक से स्थापित किया होगा। यह मानना ही पड़ेगा या तो शरीर बल अधिक था अथवा उस समय की तकनीक आज से उत्कृष्ट थी। बहुत ऊँचाई तक उठा कर रखे गए होंगे? वे इतने सटीक और सुस्पष्ट बैठे है कि उन्हें देख कर आश्चर्य होता है। हालांकि अंकोरवाट के मन्दिर में भी शिलाखण्डों का प्रयोग किया गया है परन्तु वे इतने विशाल नहीं है।[८]

यह मन्दिर ६० फुट लम्बा तथा ३८ फुट चौड़ा है। इसके चतुर्दिक का प्रांगण अधिक महत्वपूर्ण है। यह देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह २२० फुट लम्बा तथा १४२ फुट चौड़ा है। चारों ओर लगभग १ फुट जल भरा रहता था। जल के मध्य मन्दिर था। वह स्तम्भावली मूल से १ फुट ऊंचा रहता था। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए मुख्य द्वार से मन्दिर द्वार

तक टुकड़े-टुकड़े पत्थर सेतु तुल्य रखे थे। उन पर होकर भक्त मन्दिर में पहुंचते थे। इसी प्रकार शिलाखंडों के सेतु सब द्वारों से मन्दिर पहुंचने तक बने थे। लिदर नदी से नहर निकाल कर यहां पानी लाया गया था। जिसका जल सर्वदा ताजा, निर्मल एवं स्वच्छ रहता था।[६]

प्रस्तुत मन्दिर के तीन खण्ड हैं – अर्धमंडप, अन्तराल और गर्भगृह। गर्भगृह में सूर्य देव की मूर्ति विराजित थी।[१०] इस विशाल मन्दिर में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सूर्य देवता की मूर्ति इस प्रकार से स्थापित की गई थी कि वह ब्रह्मा, विष्णु व महेश का एक साथ प्रतिरूप लगे। सुबह ब्रह्मा के रूप में सृष्टिकर्ता, दोपहर को विष्णु के रूप में संरक्षक और शाम को शिव के रूप में संहारक। गर्भगृह की दीवारों पर एक ऐसा यन्त्र लगा होता था जिसके कारण सूर्य की रोशनी सारा दिन सूर्य की मूर्ति पर पड़ती थी और वह चमक पड़ती थी।[११] स्थानीय मान्यता के अनुसार मन्दिर में जितने भी छोटे-छोटे कक्ष थे वे सभी सुबह से शाम तक सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहते थे। अन्तराल और अर्धमंड़प में अत्यन्त सुन्दर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट मूर्तियां थी। लेकिन वे वर्तमान में इतनी खंडित अवस्था में है कि उन्हें पहचानना बहुत कठिन है।

मन्दिर आयताकार है। उत्तर-दक्षिण दिशा में चौड़ा तथा पूर्व पश्चिम दिशा में लम्बा है। तोरण द्वार पश्चिम में है। मुख्य द्वार पश्चिमोभिमुख है। गर्भगृह में ६ द्वारों को पार करके प्रवेश होता है। पूर्व-पश्चिम में २६ बड़ी स्तम्भावली है। मध्य अर्थात् १३ स्तंभों के पश्चात् छोटा मन्दिर दिवाल (दिवार में बना स्थान) में बना है। दो स्तम्भों के मध्य २४ लघु गवाक्ष कोठरियां है। उनमें प्रतिमायें रखी होती थी। यही स्वरूप पूर्व-पश्चिम व उत्तर दिशा वाली स्तम्भावली एवं गवाक्षों का है। पूर्व दिशा की ओर दक्षिण-उत्तर में १६ स्तम्भावलियां है उनके मध्य दक्षिण तथा उत्तर दिशा की स्तम्भावलियों के समान एक बड़ा गवाक्ष नहीं बना है। पश्चिम दिशा में उत्तर-दक्षिण स्तम्भावली में मध्य तोरण द्वार है। तोरण द्वार के उतर दक्षिण ६ स्तम्भावलियां तथा ६ गवाक्ष है। दोनों ओर को जोड़ने पर संख्या १२ आती है। यही द्वादश अर्थात् आदित्य के प्रतीक है। मन्दिर के तीन द्वार हैं। तोरण द्वार में तीन देहलियां तथा द्वार है। प्रथम द्वार बहुत चौड़ा है, मध्यवर्ती संकीण है यह द्वार संभवतः खोलने एवं बंद करने के लिए कपाट युक्त था। तीसरी ओर भी द्वार था जोकि तीन लोक या त्रिलोक्य के प्रवेश द्वार के प्रतीक थे।[१२]

मन्दिर की बाहरी दीवार पर उकेरित प्रतिमाएं

मन्दिर का अर्धमंडप १८ फुट १० इंच चौड़ा है। मन्दिर का अंतराल १८ फुट लम्बा, ४ फुट ६ इंच चौड़ा है। जबकि गर्भगृह १८ फुट ५ इंच लम्बा तथा १२ फुट १० इंच चौड़ा है। मन्दिर की भिति ६

फुट मोटी है और कक्षों के भीतर जाने के लिए ४ फुट ५ इंच चौड़ी दहलीज है।[१३]

प्रथम मण्डप की दीवाल पर त्रिभुज अष्टभुज वनमालाधारी विष्णु मूर्ति अवस्थित है। उनका वाम हस्त एक चामरधारिणी पर स्थित है। उत्तर दिवाल की मूर्ति के चरणों के मध्य पृथ्वी की प्रतिमा है। तीन मुखों में एक वाराह, दूसरा सिंह तथा मध्यवर्ती मानवाकृति है। वे वाराह तथा नृसिंह अवतार को प्रदर्शित करती है, मध्यवर्ती स्वयं विष्णु है।

द्वितीय मंडप की दिवाल पर एक ओर मगर पर आरुढ़ गंगा की मूर्ति है। उनके वाम हस्त में जल पात्र तथा दक्षिण हस्त में कमल है। पार्श्व में छत्र एवं चामरधारिणी सेविका है। दूसरी तरफ कच्छपारुढ़ यमुना मूर्ति है। उनके दोनों पार्श्व में छत्र एवं चामरधारिणी परिचारिकाएं है। उन दोनों मूर्तियों के ऊपर गन्धर्वों की मूर्तियां है। मन्दिर का आतंरिक मंच ७५ फुट है। कथा है कि रनादित्य ने उसका निर्माण कराया था। बाह्यन्तरी मंच राजा ललितादित्य का निर्माण है। आतंरिक मंच पर देवताओं की मूर्तियां चित्रित है। बाह्यन्तरी मचं पर बालकृष्ण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न लीलाएं उकेरी है। उतरी दक्षिणी दीवालों पर १२ मूर्तियां है। दो मूर्तियां पूर्व की ओर है। उन में से एक अरुण की मूर्ति है। वह रथ की रश्मियों को हाथ में पकड़े हैं।[१४]

मन्दिर का प्रमुख भवन

प्रांगण में सूर्य मन्दिर के चारों ओर लघु मंदिरों के आसन है। कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं दुर्गा के उन पर मन्दिर थे। मध्य में मुख्य मार्तण्ड मन्दिर है। जोकि भारतीय परम्परा पंचायतन सभा शैली पर आधारित है। यह मन्दिर निर्माण शैली अब तक प्रचलित है। इस मन्दिर की छत गोलाकार है इसमें ८४ स्तम्भ सूर्य अशं स्वरूप है। स्तंभों में ७० गोल, १० चकोर तथा मध्यवर्ती ४ बड़े स्तम्भ है। प्रत्येक स्तम्भ साढ़े नौ फुट ऊंचा और साढ़े इक्कीस इंच व्यास के थे। स्तंभों के बीच ६ फुट साढ़े नौ इंच का अन्तर था। अब यह स्तम्भ अत्याधिक भग्नावस्था में है।[१५] मन्दिर के सम्मुख एक चौकोर सरोवर है। उसमें मन्दिर के पृष्ठ भाग से जल आकर भरता था। मन्दिर का शिखर ७५ फुट ऊंचा, ६३ फुट लम्बा चौड़ा है। गोपुर तुल्य दक्षिण तथा वाम पार्श्व में रुद्ध द्वार गोपुर है। वे ६० फुट ऊंचे मेहराबों पर स्थित है।[१६]

मार्तण्ड मन्दिर के स्तम्भों की रचना[१७]

Sr. no.		Gate	Porch	Peristyle
1.	Height (inches)	209.250	155.500	113.250
2.	Lower Dr. (inches)	25.940	24.430	21.500
3.	Base	_	29.75	25.75
4.	Upper Dr.	_	22.910	20.600
5.	Width of Capital	_	32.500	28.500

मुख्य मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा पथ है उसमें ८४ लघु मन्दिर बने हैं। उनमें विभिन्न देवताओं की मूर्तियां सिंहासन पर स्थित थी। पश्चिम दिशावर्ती प्रकार का गोपुरम द्वार है। इसी की शैली पर अवन्तिपुर मन्दिर के द्वार का निर्माण किया गया है। वह मुख्य मन्दिर तुल्य विशाल एवं चौड़ा है। गोपुरम पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर खुला है। एक दिवाल द्वारा आन्तरिक तथा बाह्य विभाजनों में विभाजित है। इस द्वार के मध्य में एक द्वार है उसमें काष्टाद्वार लगा था। गोपुरम का क्षेत्र मुख्य मन्दिर तुल्य चौकोर है। गोपुरम अलंकृत है। दंडायमान देवता तथा कतिपय श्रृंगारिक मूर्तियां है। कुछ मूर्तियां बैठी अवस्था में है। पुष्प, पल्लव तथ हंसादि पक्षियों के चित्र भी है। गोपुरम के दोनों पार्श्ववर्ती दिवालों पर त्रिमुख विष्णु की मूर्तियां है।[१८]

महत्व

मार्तण्ड सूर्यमन्दिर की कला शैली ने सम्पूर्ण विश्व के विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया था। यह उनके कथनों से प्रमाणित होता है। इन विद्वानों ने अपने ढंग से मिस्र, युनान और ईसाई गिरजाघर से तुलना करना प्रारम्भ किया। कनिंघम के वर्णनानुसार इस स्थान से कश्मीर का मनोरम दृश्य प्राप्त किया जा सकता है। यह परिज्ञात विश्व का सबसे सुन्दर दृश्य कहा जायेगा। इसके नीचे ६० मील चौड़ी तथा १०० मील लम्बी कश्मीर की सुन्दर घाटी है। मार्तण्ड को देखने से बाह्यस्वरूप पर पहला प्रभाव यही होता है कि यूनान की स्तम्भावालियों से मार्तण्ड की स्तम्भावालियों की शैली मिलती है। मन्दिर अपने बरान्दा, त्रिभुजाकार तोरण या शैलपद, भारतीय शैली की अपेक्षा यूनानी शैली का अधिक स्मरण दिलाता है। यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह वास्तुशैली जो भारतीय वास्तुशैली से नहीं मिलती और जिसमें यूनानी शैली का साम्य है, केवल एक आकस्मिक कार्य के कारण लिया गया होगा, जोकि उसमें प्रत्यक्ष साम्यता परिलक्षित करती है।

यूनानी तथा कश्मीरी वास्तुकला में अत्याधिक साम्यता यह है कि दोनों स्थानों पर शताब्दियों तक एक ही पुरातन शैली का अनुकरण एवं विकास किया जाता रहा है। उनमें परिवर्तन नहीं हो सका। उन्हें देखकर यह कहना कठिन होगा कि उनका विकास एक ही प्रकार के हिन्दू स्थापत्य या वास्तुकला के द्वारा हुआ है। मार्तण्ड का स्थापत्य एवं उसकी परिकल्पना पूर्व एवं पश्चिम का अनुपम कलात्मक मिश्रण है। कश्मीर पर तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, गंधार, यूनानी तथा ईरानी स्थापत्य एवं भवन - रचना का प्रभाव पड़ चुका था।

इस मार्तण्ड मन्दिर की स्थापत्य शैली से आश्चर्यचकित श्रीवाईन, जिसने कि १८३५ में इस स्थान को देखा था ने कहा – ''मैं आश्चर्यचकित रह गया। इस मन्दिर की सामान्य साम्यता 'आर्क' के कथित वर्णन से मिलती देखकर और इसके प्रकार की दिवालों से प्रतीत होता है कि यह येरूशलम के मन्दिर की अनुकृति है। इसे देखकर एक प्रश्न अनायास उठता है। कश्मीर मन्दिर के कलाकार यहूदी स्थापत्य, जिन्होंने येरूशलम मन्दिर की परिकल्पना निर्माण की सुविधा के कारण रखी हो।''

पर्यटक कैप्टन नाइट वर्ष १८६० में लिखते हैं – ''यह एक ईसाई 'चर्च' की तरह लगता है। यदि कुछ दूर से देखा जाये तो इस प्रकार के चर्च प्रायः आयरलैंड में मिलते हैं, न कि मूर्तिपूजक स्थानों में।' दूसरी ओर वेकफील्ड अपनी पुस्तक हैप्पी वैली में लिखते है – मार्तण्ड के समान हिन्दुस्तान तथा सिन्धु नदी के पश्चिम दिशा के देशों में कोई रचना नहीं मिलती। स्थापत्य के एक अच्छे विद्वान ने उसे बताया था कि कश्मीरी मन्दिरों की शैली किसी भी अबतक विदित निर्माण तथा भारतीय शैलियों से भिन्न है। इस की शैली निर्माण रोमन निर्माण में सबसे अधिक अन्तर यह है कि इनमें हिन्दुत्व की छाप है। उनके कलाकार रोमन कला की कॉपी करने वाले हिन्दू थे न कि हिन्दू कला की नकल करने वाले रोमन या यूनानी थे।[१६]

इस प्रकार के वर्णनों से ब्रिटिश लेखकों की साम्राज्यवादी सोच और लेखन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। डॉ. रघुनाथ सिंह के विचार में मार्तण्ड मन्दिर की शैली एवं परिकल्पना का रहस्य जानने के लिए ललितादित्य के जीवन, पर्यटन एवं विजयों का अध्ययन करना अति आवश्यक है। उनके अनुसार ललितादित्य ने उतर - पश्चिम, सौराष्ट्र, कर्णाटक, समुद्र तट, धुर दक्षिण और इसके साथ-साथ तिब्बत तथा अफगानिस्तान तक अपनी विजय का परचम लहराया था और उसने अनेक प्रकार के वास्तु, भास्कर, मूर्ति व स्थापत्य आदि कलाओं का दर्शन किया था। उसने भारतीय समुद्रतट पर प्रातः काल के सूर्य का समुद्र से उठना तथा सांयकाल पश्चिम में ही सूर्य बिम्ब का विलीन होना देखा था। उसने सूर्य बिम्ब के चतुर्दिक अथाह विस्तृत समुद्र देखा था। उसने दक्षिण के उन मन्दिरों को भी देखा था, जो सरोवरों के मध्य बनाए गए थे। उसने इस परिकल्पना तथा मार्तण्ड मन्दिर के चारों ओर जल भर दिया। दक्षिण के मन्दिर की कल्पना उसने अपने धुर-उत्तर कश्मीर में साकार कर दी थी। कश्मीर में कालान्तर में जल या सरोवर मध्य मन्दिर निर्माण की शैली चल पड़ी।[१७]

डॉ. रघुनाथ सिंह का कथन है कि ललितादित्य ने अनेक प्रकार के स्थापत्य को स्वयं देखा था। उसके साथ पर्यटन करने वाले कलाकारों ने भी उन्हें देखा था। उनके पर्यटन, प्रतिभा, भवन एवं स्थापत्यादि दर्शनों के परिणाम द्वारा नवीन शैली का उदय होना अनिवार्य था। उस पर कश्मीर का प्रभाव होना भी अवश्यंभावी था। मार्तण्ड का मन्दिर इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उस पर भारतीय गंधार, यूनानी स्थापत्य, वास्तु एवं मूर्तिकला का प्रभाव पड़ा था, किन्तु उस प्रभाव ने कश्मीरी आत्मा को प्रभावित नहीं किया।[१९]

कश्मीर के कई मन्दिरों, मठों, बिहारों के समान ही इस विशिष्ट सूर्य मन्दिर को कई राजाओं द्वारा लूटा गया और इसे तहस-नहस करने का भी पूर्ण प्रयास किया गया। उन राजाओं में प्रमुख रूपी

तरुष्क हर्ष राजा ने अपने राज्य में किसी भी गांव पुर तथा नगर का एक भी मन्दिर नहीं छोड़ा, जिसकी देवमूर्ति न तोड़ी गयी हो। राजा हर्ष के उस अत्याचार से नगर में रणपुर स्वामी तथा श्री मार्तण्ड नामक मन्दिर ही शेष बचे थे। हालांकि हर्ष का यह कुकृत्य अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से था।[२२]

मार्तण्ड मन्दिर को तहस-नहस करने का वर्णन तो यहां के भग्नावशेष ही स्वयं कहते हैं। इस मन्दिर को नष्ट करने का कुकृत्य सिकन्दर बुतशिकन द्वारा किया गया था। हालांकि यह मन्दिर इतना भव्य था कि सिकन्दर बुतशिकन बहुत प्रयास करने पर भी उसे पूरी तरह नष्ट न कर सका।[२३]

पीर हसन लिखते हैं सबसे पहले, मार्तण्ड सूर्य के मन्दिर को मिस्मार करने के लिए सिकन्दर बुतशिकन ने इसकी नीवें खुदवाईं फिर उनमें लकड़ियां भर कर एक साल तक उन्हें जलाता रहा, परिणामस्वरूप पत्थर काले हो गए लेकिन इसके निर्माण में कोई फर्क नहीं पड़ा।[२४]

सारांश

कश्मीर का सूर्य मार्तण्ड मन्दिर वर्तमान समय में अपनी भग्नावशेष अवस्था में भी अपनी तत्कालीन भव्यता को बनाये हुए है। जो भी इस मन्दिर में प्रवेश करता है वह मन्दिर की स्थापत्य कला शैली एवं निराली परिकल्पना को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है। इस मन्दिर से उस समय के भारतीय राजाओं की बुद्धिमता प्रदर्शित होती है। इसके साथ ही साथ उस समय के समाज के धार्मिक एवं सांस्कृतिक विश्वास की जानकारी मिलती है। प्रस्तुत मन्दिर राजा ललितादित्य की भारतीय समाज को अद्भुत देन है, जिसे कि विश्व प्रसिद्धि प्राप्त है। यह मन्दिर इतना विशाल, भव्य एवं सुन्दर है कि अगर इसे अजूबा और विश्व धरोहर स्थल घोषित किया जाए तो कुछ गलत नहीं होगा। साम्राज्यवादी लेखकों ने अपनी विचारधारा से भारतीय भावना को ठेस पहुंचाने का कार्य किया। उन्होंने हिन्दू आस्था केन्द्र और विश्वास को पश्चिम के चश्में से देखने का कुत्सित कार्य किया है।

अतः जिस प्रकार मुस्लिम काल में तहस-नहस किए गए देश के कई अन्य मन्दिरों का सरकार कई प्रक्रियाओं द्वारा पुर्ननिर्माण कर रही है। उसी प्रकार इस खण्डर रूप धारण किए हुए मार्तण्ड मन्दिर का भी पुर्ननिर्माण उसी कला, शैली और परिकल्पना के आधार पर किया जानाा चाहिए। इस प्रकार के प्रयासों द्वारा हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को संजो सकते हैं जोकि अपने देश, अपनी सभ्यता व संस्कृति के प्रति हमारा कर्तव्य भी है।

संदर्भ :

1. Jonaraja, Rajatarangni (Tr. By Raghunath Singh), Varanasi, 1972, P. 533
2. Alexander Cunningham, An Essay on the Arian Order of Architecture, As Exhibited in the Temples of Kashmir, Calcutta, 1848, P - 18, See Also - Walter R. Lawrence, The Valley of Kashmir, Jammu Tawi, 1996, PP. 170-171.
3. Jonaraja, Op.cit; P - 536, See Also- Alexander Cunningham, Op.cit ; P- 18
4. Jonaraja, Op.cit P- 534
5. Ibid, P. 540
6. Alexander Cunningham, Op. cit; P- 18

7. P.N.K. Bamzai, Culture & Political History of Kashmir, Volume- 1, New Delhi- p - 128, See also- Jonaraja, Op. cit, P- 533
8. Jonaraja, op.cit, PP-533-34, See also- Alexander Cunningham, Op.cit: P- 29, Walter R- Lawrence op.cit, p- 171
9. Jonaraja. op.cit.
10. Alexander Cunningham, op.cit; PP 26-27
11. Ibid, 27-28, See also- Walter R. Lawrence, op.cit; p- 172
12. Jonaraja, op.cit;PP- 534-35
13. Alexander Cunningham, op.cit; PP - 23-24. see also- Jonaraja, op.cit; Pp- 539
14. Jonaraja, Op.cit p- 539
15. Alexander Cunningham, op.cit; P-27
16. Ibid, P- 26
17. Ibid, PP - 78-80
18. Jonaraja, op.cit;p- 540
19. Ibid, PP- 535-537
20. Ibid, PP 537-538
21. Ibid, P - 539
22. Kalhana, Raja Tarangini (tr. By Shri Ramtej Shastri Pandey) Delhi, 1985, P-264
23. Jogesh Chandra Dutt; 'Medieval Kashmir, New, Delhi, P- 54, See also - B.L. Sharma, Kashmir Awakes' delhi, P- 29
24. Jonaraja, op.cit; P - 539

[9]चेयर प्रोफेसर, जनजातीय अध्ययन पीठ
हि.प्र. केन्द्रीय विश्वविद्यालय देहरा,
जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

[२]शोधार्थी,
जनजातीय अध्ययन पीठ
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
देहरा, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

ममेल शिव मन्दिर का पुरातात्त्विक अध्ययन

डॉ. भाग चन्द चौहान

ममलेश्वर महादेव मन्दिर करसोग घाटी जोकि स्वतन्त्रता से पहले सुकेत रियासत का क्षेत्र था और वर्तमान में तहसील करसोग, जिला मंडी के ममेल (करसोग) नामक स्थान में स्थित है। इस क्षेत्र और मन्दिर का इतिहास अति प्राचीन माना जाता है। इसका इतिहास लोक-कथाओं, लोक-गाथाओं एवं स्थानीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं तथा स्मारिकाओं में ही मिलता है। इतिहासकारों द्वारा पुरातात्त्विक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्यों के आधार पर मन्दिर, स्थान एवं निर्माण का प्रमाणिक इतिहास लिखने की आवश्यकता है। जबकि इस पौराणिक मन्दिर का विज्ञान संवत साक्ष्य-परक इतिहास लेखन करने के लिए मन्दिर परिसर में उपलब्ध पुरातात्त्विक अवशेष तथा आस-पास के क्षेत्रों में स्थित सम्बन्धित मन्दिरों की शैली एवं स्थानों से प्राप्त अन्य पुरातात्त्विक वस्तुएं अध्ययन के लिए उपलब्ध हैं।

ममेल शिव मन्दिर परिसर में कुछ दशक पूर्व हुई खुदाई से प्राप्त महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक अवशेषों की बनावट के आधार पर उनके निर्माण काल-खण्ड का अध्ययन राज्य कला, भाषा एवं संस्कृति विभाग ने तो किया है, परन्तु इस अध्ययन में यहां की सभी मूर्तियों नहीं ली गई है। इसका कारण क्या रहा, इसकी जानकारी स्थानीय कारदारों के पास भी नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र खुदाई से प्राप्त हुई सामग्री पर आधारित है। परिसर की कई मूर्तियां एवं मन्दिर से जुड़े बहुत ऐसे अवशेष पाए गए हैं। मन्दिर परिसर में बहुत सारी मूर्तियां और अन्य अवशेष बिखरे पड़े है, जिन्हें शैली के अनुसार मुख्यतः तीन प्रकार में बांटा जा सकता है। जिसमें पहला दक्षिणी शैली, दूसरा गंधार शैली और तीसरा मध्यकालीन या आधुनिक शैली का प्रकार माना जा सकता है।

गांधार शैली की मूर्तियां

तीसरा प्रकार मन्दिर के गर्भ गृह में स्थित अष्ट-धातु की मूर्ति है, जिसमें शिव, पार्वती को गणेश एवं कार्तिकेय सहित पूरे शिव-परिवार को दर्शाया गया है। इस प्रकार का पूर्ण शिव-परिवार प्रदर्शन जिसमें श्री कार्तिकेय जी भी

उपस्थित हो अपने आप में दुर्लभ माना जाता है। देखने में तो यह कला का नायाब नमूना लगता है और मध्यकालीन या आधुनिक काल में निर्मित हुआ लगता है। परन्तु किंवदंतियों के अनुसार यह मूर्ति रावण ने लंका से एक बाण द्वारा ऋषि परशुराम के निवेदन के उपरान्त स्थापित करवाई जाने की गाथा प्रचलित थी। इस तरह उसका काल निर्धारण करना बहुत ही कठिन कार्य लगता है। इस मूर्ति के आधार पर एक पंक्ति इंगित है, जिसकी लिपि का अभी तक कोई भी विद्वान अर्थ नहीं निकाल पाया है। हमने भी इसका प्रयास किया था परन्तु अभी तक सफलता नहीं मिली है। मेरे एक विद्वान् मित्र 'प्रो. सुभाष काक' अमेरिका में रहते हैं जो लिपि को डिकोड के विषय में महारत रखते है, को भी इस कार्य को सौंपा गया था परन्तु अभी तक कोई कुछ स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त हो पाई है। जबकि मेरे आकलन के अनुसार यह लिपि थोड़ी-थोड़ी 'सिंहली लिपि' से मेल खाती लगती है। मूर्ति को लंका से रावण द्वारा स्थापित किया जाना और इस लिपि का सिंहली जैसा या उसके नजदीक होना अपने आप में एक और बड़ा प्रश्न खड़ा करता है कि ऐसा भी संभव है?

इस शोध कार्य में मूर्तियों की बनावट को देखकर यह निष्कर्ष बन पाया है कि मन्दिर परिसर में कम से कम तीन प्रकार की मूर्तियां है, जिनमें से पहला प्रकार तो वह जो राज्य कला, भाषा एवं संस्कृति विभाग ने जांची थी। ये सब लगभग दक्षिण शैली से बनी सुन्दर कला का नमूना प्रस्तुत करती है। इनका काल-खण्ड विभाग द्वारा ९वीं सदी से १३वीं सदी तक निर्धारित किया गया है। दूसरा प्रकार अति प्राचीन है जो कंधार शैली से सम्बन्धित रखता है, जिसमें एक विशाल शिव पार्वती की मूर्ति है जो बहुत बड़ी होने के कारण तत्कालीन मन्दिर के गर्भ-गृह की मूर्ति होने का संकेत करती है। आज के मन्दिर में यह मूर्ति प्रवेश द्वार के पास दीवार में स्थापित की गई है। मन्दिर में एक विशाल गेहूं के दाने का जिवाश्म है जिसकी लम्बाई लगभग १० सेंमी. और अधिकतम व्यास ६सेंमी. है। जो आज के युग के अनुसार एक अद्‌भुत घटना है। इसके अतिरिक्त एक भेखल की ढोल है जिसकी लम्बाई लगभग ६ फुट और व्यास ३.५ फुट है, जबकि वर्तमान युग में इसका अधिकतम व्यास मात्र ४ सें.मी. है। क्या ऐसा भी कभी हो सकता है, ये वस्तुएं दुर्लभ है और इस प्रकार से इन दोनों वस्तुओं के पुरातात्त्विक एवं वैज्ञानिक अन्वेषण अभी बाकी है। यहां एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस प्रकार की दुर्लभ वस्तुएं पुरातात्त्विक, कृषि एवं वनस्पति विज्ञानियों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

भेखल की ढोल

इस शोध कार्य के निष्कर्ष में यह भी पाया गया कि इस परिसर में पड़े मूर्ति एवं अन्य खण्डहर के अवशेष की विभिन्न शैलियां तथा मन्दिर की वर्तमान स्थिति एवं शैली इसकी विभिन्न

काल-खण्डों में बार-बार निर्माण होने का संकेत करते हैं। प्राप्त तथ्यों के अनुसार मन्दिर का कम से कम चार बार जीर्णोद्धार हुआ है जिसमें पहला दूसरी सदी के आसपास, दूसरा नौंवी सदी जो कि शिखर शैली में तीसरा सोलहवीं सदी के आसपास जो कि पैगोड़ा शैली में और चौथा अभी इकीसवीं सदी में हुआ है। वर्तमान मन्दिर पैगोड़ा शैली में ही पुनः निर्मित हुआ है।

नव निर्मित वर्तमान मन्दिर

मन्दिर परिसर में अन्य अवशेषों के अतिरिक्त ४ नंदी, ५ शिवलिंग, ४. छोटे-बड़े अमलक, ११ विष्णु, १ वराह, २ फुटबाल आकार के गोले (वराह मूर्ति के) ८ सूर्यनारायण, ४ गणेश और ५ महिषासुर मर्दिनी की मूर्तियां है। इस प्रकार सभी मूर्तियां एक ही स्थान में प्राप्त होने पर एक ही स्थान से कई मन्दिर होने का भी संकेत करती हैं। मूर्तियों के निर्माण में कनिष्क (गांधार शैली) आदिशंकराचार्य (दक्षिण शैली) तथा मन्दिर निर्माण में शिखर शैली और नेपाल की गोरखा (पैगोड़ा शैली) काल का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। परिसर में पड़े कुछ अवशेष नीचे दर्शाए गए हैं –

क्षेत्र में प्रचलित लोककथाओं, लोकगाथाओं, पांडुलिपियों तथा ताम्रपत्रों का यदि और गहराई से अध्ययन करें तो मन्दिर के इतिहास के कई रहस्यों से पर्दा उठ जाएगा। इसी प्रयास में मन्दिर परिसर से प्राप्त पर्याप्त अवशेषों तथा सम्बन्धित आसपास के मन्दिर जैसे कामाक्षा मन्दिर काओ, सूर्य-मन्दिर नीरथ और दत्तात्रेय मन्दिर दत्तनगर की वर्तमान शैली और उपलब्ध अवशेषों को एक साथ रख कर अध्ययन किया गया। इस प्रकार विशेषकर सूर्यनारायण मन्दिर नीरथ (जो कि लगभग १८०० वर्ष से सुरक्षित खड़ा है) के साथ जोड़कर ममेल शिव मन्दिर प्राचीन समय में कैसा रहा होगा का अर्थात् सहस्त्र वर्ष पूर्व मन्दिर के अति प्राचीन स्वरूप-शैली को कलात्मक ढंग से कंप्यूटर द्वारा बनाने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य में ममेल शिव मन्दिर के निर्माण का इतिहास पुरातात्त्विक अवशेषों तथा अन्य साक्ष्यों का विस्तृत अध्ययन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस शुरुआत से मन्दिर एवं क्षेत्र के इतिहास लेखन में इतिहासकारों और पुरातत्त्व, वनस्पति, कृषि वैज्ञानिकों तथा युवा शोधार्थियों के लिए कई महत्वपूर्ण विषय खुल गए हैं। इस स्वरूप में कार्य रूप में लाने के लिए सैकड़ों छाया-चित्र एवं दस्तावेज प्रयोग किए गए है, जिन सबको पत्रिका में जगह की कमी के कारण यहां नहीं प्रस्तुत किया गया है, जबकि इसका पूरा रिकॉर्ड एक सी.डी. में शोध संस्थान नेरी के पुस्तकालय में भेंट किया जा रहा है।

अधिष्ठाता, भौतिक एवं पदार्थ विज्ञान,
हि.प्र. केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)

व्यक्तित्व विशेष

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

कृष्णानन्द सागर

भारतवर्ष के स्वर्णिम अतीत को इतिहास लेखन तथा पुरातात्त्विक शोध के माध्यम से उजागर करने वाले इतिहासकारों और पुरातत्वविदों की श्रृंखला में डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर का नाम अग्रगण्य है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के इतिहास के प्रति डॉ. वाकणकर का समर्पण और अदम्य उत्साह अनोखा था। लम्बा कद, सौम्य आकृति तथा सुडौल शरीर निष्कपट और हंसमुख चेहरा, भव्य ललाट, चमकती आंखें और बुलन्द आवाज के भीतर डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर में भारतीय इतिहास लेखन और पुरातात्त्विक शोध का एक युग समाहित था। उनका जन्म मध्यप्रदेश के नीमच में एक विद्वान ब्राह्मण श्री श्रीधर वाकणकर के घर ४ मई सन् १९१९ को हुआ था। उनकी शिक्षा नीमच, उज्जैन धार, मुम्बई, वाराणसी, लन्दन व पेरिस में हुई। वे बाल्यकाल से ही कला, विशेष रूप से चित्रकला के क्षेत्र में प्रतिभा सम्पन्न थे। उन्होंने जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुम्बई से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा भी किया था। सन् १९७३ में उन्हें पुणे विश्वविद्यालय से प्री-हिस्टोरिक आर्ट आफ इण्डिया विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि मिली।

कला के प्रति समर्पित डॉ. वाकणकर ने १९५३ में माधव नगर उज्जैन में स्थित अपने घर में ही 'भारती कला भवन'' नाम से कला विद्यालय की स्थापना की। १९८० में इसी भारती कला भवन में उन्होंने शैल कला संस्थान (Institute of Rock Art) की स्थापना की। वे स्वयं उसके निदेशक रहे। यद्यपि भारत में प्रागैतिहासिक चित्रकला की खोज सन् १८६७-६८ में ही हो गई थी, लेकिन पश्चिम के पक्षपाती पुरातत्त्वविदों ने उसे उपेक्षित रखा। डॉ. वाकणकर ने अपने अथक शोध को जारी रखते हुए भारत की समृद्ध धरोहर से सम्पूर्ण विश्व को परिचित कराया। सन् पचास के दशक में उन्होंने प्रसिद्ध पुरातत्वविद् प्रोफेसर एच.डी. सांकलिया और एच.वी. त्रिवेदी के सान्निध्य में उत्खनन सीखी।

१९५७ में वे एक बार रेलगाड़ी द्वारा भोपाल से नागपुर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें विंध्याचल की पहाड़ियों में बड़ी-बड़ी चट्टानों ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। बस, वे अगले ही स्टेशन पर गाड़ी से उतर गए और पैदल ही उन पहाड़ियों में जा पहुंचे। पहली चट्टान के पास ही उन्हें कुछ गुफाएं दिखीं। वे उनके अन्दर चले गए। गुफाओं की दीवारों पर भित्ति-चित्र बने हुए थे। एक गुफा में 'अरण भैंस' और गैंडे' का चित्र था। जिस प्रकार की भैंस तथा गैंडे के चित्र वहां अंकित थे, वे

आज से २० लाख वर्ष पूर्व पाए जाते थे। इसका अर्थ है कि वहां की संस्कृति बहुत पुरानी थी। अतः उन्होंने वहां और खोज करने का निश्चय कर लिया और समय-समय पर वहां जाते रहे। १९७१ से १९७८ तक विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन की ओर से उन्होंने भीमवेटका में ७६० गुफाओं की खोज की तथा उनमें से १३ गुफाओं की खुदाई भी की। वहां २० लाख वर्ष से लेकर १३वीं शताब्दी तक मानवीय जीवन के अस्तित्व का प्रमाण मिला।

१९६५ में डॉ. वाकणकर विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के प्राचीन इतिहास विभाग की 'उत्खनन एवं संग्रहालय शाखा के प्रभारी बने। दो दशकों के अपने कार्यकाल में उन्होंने मध्यप्रदेश के जिन स्थलों की खुदाई की, उनमें प्रमुख हैं – कयथा, आजाद नगर और धंगवादा के ताम्रपाषाण कालीन स्थल (कैल्कोलिथिट साइट), भीमबेटका के पुरापाषाण कालीन स्थल (पैलियोलिथिट साइट) तथा मध्यप्रस्तर कालीन स्थल (मेसोलिथिक साइट)।

लगभग पचास वर्षों तक पहाड़ों व जंगलों में पैदल घूमकर डॉ. वाकणकर ने विभिन्न प्रकार के हजारों चित्रित शैल आश्रयों (Painted Rock shelters) का पता लगा कर उनकी कॉपी बनायी। उन्हें शैल कला की भी तो मानों धुन ही सवार हो गई थी। अतः उन्होंने देश-विदेश में इस विषय पर विस्तार से लिखा और व्याख्यान दिए। इतना ही नहीं, तो उन्होंने शैल-चित्रों की एक प्रदर्शनी भी बनाई और उसे विश्व के अनेक स्थानों पर प्रदर्शित भी किया। ये स्थान थे – मुम्बई, बडोदरा, जयपुर, उज्जैन, इन्दौर, खैरागढ़, रोम, पेरिस, फ्रैंकफर्त, आस्ट्रिया व अमरीका आदि।

डॉ. वाकणकर के कार्यों के महत्त्व को समझते हुए और उन्हें स्वीकृति प्रदान करते हुए भारत सरकार ने १९७५ में उन्हें 'पद्मश्री' की उपाधि से सम्मानित किया। बाद में १९८० में 'इण्डियन' सोसायटी फार प्री-हिस्टोरिक एण्ड क्वाटर्नरी स्टडीज' के वे अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

१९७६ में उन्होंने अमरीकी विद्वान आर.आर.आर ब्रुक्स के साथ मिलकर 'स्टोन एज पेटिंग्स इन इण्डिया' नामक पुस्तक लिखी। प्राचीन भारतीय शैल कला पर यह विश्व में प्रथम पुस्तक थी। उन्होंने भारत में जिन स्थानों पर उत्खनन किया, वे थे – नावदा टोली (१९५३), महेश्वर (१९५४), इंदरगढ़ (१९५९), मनोटी (१९६०), जावरा (१९६०), कामथा (१९६६), भीमबेटका (१९७१ से १९७८ तक), मन्दसौर (१९७४ व १९७६), आजादनगर (१९७४), दतेवाड़ा (१९७४ से १९८२) तथा रुणीजा (१९८७)।

इनके अतिरिक्त विदेश में जहां पर उत्खनन किया, वे स्थान थे – बेरोकोनियम - रोमन साइट, इंग्लैंड (१९६१), इस्कोलीव, फ्रांस (१९६२), तथा मध्य फ्रांस में आटसी, सूरक्यूट (१९६२)। उन्होंने गुप्त, मौखरी, औलिकर, परमार एवं मुलुण्ड काल के शिलालेख तथा ताम्रलेख भी खोजे तथा उन अभिलेखों का वाचन भी किया।

डॉ. वाकणकर की शैक्षणिक अभिरुचि केवल प्रागैतिहास एवं शैलकला तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व के अनेक क्षेत्रों में काम किया, जैसे-मुद्राशास्त्र

(न्युमिसमैटिक्स), पुरालेखशास्त्र (एपिग्राफी), पुरापाषाण शास्त्र (पैलियोग्राफी) संस्कृत भाषा एवं साहित्य। मैं उज्जैन में १९८० में उनके यहां सपत्नीक गया था, तो उन्होंने अपना पूरा घर मुझे दिखाया था। घर के प्रत्येक कक्ष में भिन्न-भिन्न प्राचीन कला कृतियां व्यवस्थित रूप से रखीं थी। कौन सी कला कृति कब की है तथा कहां से प्राप्त हुई, यह भी उन्होंने बताया। भोजन के लिए वे हमें रसोई कक्ष में ले गए। रसोई में भूमि पर ही आसन बिछा कर भोजन दिया। भोजन उनकी पत्नी ने स्वयं बनाया था और उन्होंने ही परोसा। उनकी पत्नी संस्कृत की विदुषी थीं और राष्ट्र सेविका समिति की कार्यकर्त्री थीं। उनके उस निवास को देखकर लगा कि घर के नाम पर तो केवल उनकी रसोई ही है, बाकी पूरा भवन शैल कला संस्थान है। उनकी बोल-चाल एवं वेश-भूषा में तो सादगी झलकती ही थी, उनके निवास को भी मैंने पूर्णतया सादगी पूर्ण पाया।

यहां भारतीय कला भवन में प्राचीन सिक्कों, पाण्डुलिपियों और कलाकृतियों का अच्छा संग्रहालय है। इसमें प्राचीन भारत के लगभग दस हजार सिक्कों का संग्रह है। डॉ. वाकणकर के जीवन का अधिकांश समय मध्यप्रदेश में बीता। वहां चलने वाले अनेक कार्यों व संस्थाओं से वे जुड़े रहे और उनमें सक्रिय भूमिका निभाते रहे। वहां वे 'हरिभाऊ वाकणकर' नाम से प्रसिद्ध थे।

वे बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक रहे तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी सक्रिय रहे। उज्जैन में सरस्वती शिशु मन्दिर की स्थापना उन्होंने ही की। थियोसोफिकल सोसायटी की उज्जैन शाखा के वे अध्यक्ष (१९६०) रहे। उज्जैन से ही प्रकाशित होने वाली कला पत्रिका 'आकार' के वे संरक्षक (१९७०) थे। प्रबुद्ध भारती, मध्य प्रदेश के वे अध्यक्ष (१९७५-१९७८) तथा अखिल भारतीय कालिदास समारोह समिति के आजीवन सदस्य रहे। १९८० से वे संस्कार भारती के महामन्त्री रहे। १९८० में ही मोरोपन्त पिंगले जी ने उन्हें बाबा साहब आपटे स्मारक समिति के अन्तर्गत भारतीय इतिहास संकलन समिति के कार्य के लिए मध्य प्रदेश व गुजरात के प्रमुख का दायित्व सौंपा। १९८२ में वे मध्य प्रदेश विद्यार्थी परिषद् भी अध्यक्ष रहे।

१९८५ में भारतीय इतिहास संकलन समिति ने वैदिक नदी सरस्वती के ४००० किलोमीटर लम्बे मार्ग की खोज करने का निश्चय किया। इस हेतु पुराणों में दिए गए वर्णनों के अनुसार सरस्वती नदी के संभावित मार्ग की यात्रा विशेषज्ञों द्वारा आदि बद्री से गुजरात के समुद्र तक करने की एक बृहद योजना बनायी गई। इस योजना की पूरी जिम्मेदारी श्री वाकणकर जी को दी गई और उन्हें ही उस अन्वेषक दल का नेतृत्व करने के लिए कहा गया।

वाकणकर जी ने यात्रा-मार्ग में पड़ने वाले हरियाणा, राजस्थान व गुजरात के विश्वविद्यालयों के इतिहास विभागों को भी इस योजना से जोड़ा और उनसे आग्रह किया कि यात्रा जब उनके क्षेत्र में पहुंचे तो उनके भी कुछ प्रतिनिधि कुछ दिनों के लिए इस अन्वेषक दल में सम्मिलित हों।

यात्रा आदि बद्री से आरम्भ हुई। अनेक विद्वान उनके साथ चलें। रास्ते में जो भी गांव पड़ते थे, वाकणकर जी उन गांवों के बुजर्गों से बातचीत करते थे और उनसे सरस्वती नदी के बारे में उनके

क्षेत्र में प्रचलित लोक कथाओं और अवधारणाओं को जानने का प्रयत्न करते थे और उन्हें रिकॉर्ड करते थे। वे क्योंकि बहुत अच्छे चित्रकार थे, इसलिए वे जिसका भी कुछ रिकार्ड करते थे, उसका साथ ही चित्र (स्कैच) भी पेन या पेंसिल से बना लेते थे। रास्ते में पड़ने वाले कुण्डों, बावड़ियों, जोहड़ों तथा तालाबों, रेतीले मैदानों व टीलों का तथा पर्वतीय क्षेत्रों का भी उन्होंने सर्वेक्षण किया। अनेक स्थानों से उन्होंने पत्थरों के नमूने लिए। टूटे-फूटे मिट्टी के प्राचीन बर्तनों के टुकड़े भी वे इकट्ठे कर लेते थे।

इस सर्वेक्षण यात्रा में एक सप्ताह तक उनके साथ रहे दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफन कालेज के एक प्राध्यापक ने बाद में एक गोष्ठी में अपनी यात्रा के अनुभव बताते हुए एक प्रसंग बताया। उन्होंने बताया कि ''हम लोग एक ऊंची पहाड़ी पर थे। वाकणकर जी को पहाड़ी के नीचे कुछ मतलब की चीजें दिखायी दी। उन्होंने कहा कि उसे चलकर देखना चाहिए। वह स्थान पहाड़ी से कई सौ फुट नीचे था। हम लोग अभी यही विचार कर रहे थे कि वहां पहुंचने से लिए रास्ता कौन सा है, कि हमने देखा कि वाकणकर जी पहाड़ी की ही एक ढलानदार खाई में कूद गए तथा लेटे-लेटे ही शरीर को दाएं-बाएं करते हुए नीचे की तरफ लुढ़कते जा रहे हैं। वे तीन-चार मिनट में ही उस स्थान पर पहुंच गए। उन्होंने यह सोचा ही नहीं कि मेरे कपड़ों का क्या होगा या ऊबड़-खाबड़ खाई की रगड़ों से मेरे शरीर का क्या होगा। ६६ वर्ष की आयु में भी वे इतने साहसी और कार्य के प्रति समर्पित थे। बाकी हम लोग तो उनसे आयु में छोटे ही थे। उन्हें देखकर भी किसी का साहस नहीं हुआ कि हम भी उनकी ही तरह घिसटते-लुढ़कते नीचे चले जाए। अतः बहुत संभलकर और बैठ-बैठ कर हम लोग धीरे-धीरे नीचे उतरे और काफी देर बाद उनके पास पहुंचे।

यह सर्वेक्षण यात्रा कई दिनों की थी। बाद में उन्होंने इसकी रिपोर्ट भी तैयार की थी। विश्व के अनेक देशों में पुरातात्त्विक सर्वेक्षणों तथा व्याख्यानों के लिए उन्हें आमन्त्रित किया गया। ये देश थे– इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रिया, इटली, यूनान, मिस्र, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरीका तथा मैक्सिको।

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, अभिलेख व मुद्राओं के अन्वेषक इस सरस्वती पुत्र का देश के अनेक विद्वानों ने सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निर्णय किया। इस हेतु राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली के डा. स्वराज्य प्रकाश गुप्त के संयोजन में डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर अभिनन्दन समारोह समिति का गठन किया गया। सन् १९८७ में इस समिति के तत्वाधान में देश भर में कई स्थानों पर वाकणकर जी के अभिनन्दन कार्यक्रम रखे गए। दिल्ली में यह कार्यक्रम हिमाचल भवन में हुआ था। इस अवसर पर डॉ. वाकणकर जी के एक कहानी संग्रह ''हम भी नहीं डरते मौत से'' का लोकार्पण श्री मोरोपन्त पिंगले जी के कर कमलों द्वारा हुआ था। इस पुस्तक में ही लोगों को पता लगा कि इस अन्वेषक पुरातत्ववेत्ता के रूप में एक साहित्यकार भी बैठा हुआ है।

इस दौरान एक बार वे मेरे घर नौएडा भी पधारे। तब मेरी बड़ी बेटी पांच साल की थी और छोटी चार साल की। दोनों पूरा समय उनके साथ ही चिपकी रही। वाकणकर जी ने उनकी कापी में

पेंसिल से हाथी, घोड़े आदि के चित्र बनाए। उन दोनों के भी पेंसिल स्कैच बनाए। वे एक मिनट में ही कभी कुछ बना देते थे और कभी कुछ। चित्रकारिता में उनका हाथ कितना सधा हुआ था, यह मुझे तभी पता लगा। शायद उनकी यह चित्रकारिता ही उन्हें शैलचित्रों के क्षेत्र में खींच कर ले गई।

एक बार हमारी इतिहास विषयक चर्चा हो रही थी। इस चर्चा में मैंने उनसे दो प्रार्थनाएं की–

१. भारत की विश्व को देन इस विषय पर आप लिखें।

२. भारतीय इतिहास के बारे में पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा कई प्रकार की विसंगतियां निर्मित कर दी गई हैं। परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय इतिहासकार भी उन विसंगतियों को ही सत्य मानकर इतिहास लेखन कर रहे हैं। अतः आप भारतीय इतिहासज्ञों तथा विद्यार्थियों के लिए दिशाबोध स्वरूप कुछ लिखें ताकि भारतीय इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने की दृष्टि उन्हें प्राप्त हो सके।

मेरी इन दोनों प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा कि 'भारत की विश्व को देन' विषय पर लिखने में तो समय लगेगा लेकिन हां दूसरे विषय पर मैंने अभी सितम्बर १९८६ में लन्दन में एक व्याख्यान दिया था। उस व्याख्यान को ही सम्पादित करके आप छाप सकते हैं।

अगली बार वे दिल्ली आए तो उस व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तर लाकर उन्होंने मुझे सौंप दिया। उसका सम्पादन करते समय कुछ बातें तो मेरी समझ में नहीं आईं। अगली बार उनके दिल्ली आने पर मैंने उनसे इस बारे पूछा। उन्होंने उनका समुचित उतर दिया और तदनुसार पाण्डुलिपि में संशोधन भी कर दिया। फिर वे बोले – ''मैं यह पाण्डुलिपि उज्जैन ले जाता हूं। वहीं उसे पूरा पढ़ूंगा और साथ ही इसमें दिए गए उद्धहरणों तथा संदर्भों की भी फिर से जांच कर लूंगा।

अगली मार्च १९८८ के अन्तिम सप्ताह में वे दिल्ली आए। दिल्ली से उन्हें सिंगापुर में होने वाले विश्व हिन्दू सम्मेलन में भाग लेने जाना था। २९ मार्च को मैं उनसे मिला तो उन्होंने बताया कि उनका काफी समय तो प्रवास में निकल गया और शेष समय 'सरस्वती नदी शोध' की प्रदर्शनी तैयार करने में। इसलिए पाण्डुलिपि को देखने का समय ही नहीं मिल सका। अन्त में उन्होंने वचन दिया कि सिंगापुर से लौट कर सबसे पहला काम यही करूंगा। वे पाण्डुलिपि मेरे पास ही छोड़ गए।

वे सिंगापुर चले गए। ३ अप्रैल को वहां सम्मेलन में उनका व्याख्यान होना था। सम्मेलन स्थल पर पहुंचने से पहले अपने होटल के कक्ष में ही वे उस लिखित व्याख्यान को अन्तिम रूप दे रहे थे। वे कुर्सी पर बैठे थे। सामने मेज पर कुछ कागज-पत्र रखे थे। हाथ में पैन था। प्रातः लगभग ९.०० बजे का समय था। विधाता ने उनको इसी अवस्था में अपने पास बुला लिया। सिंगापुर के जो कार्यकर्ता उनको सम्मेलन स्थल पर ले जाने के लिए होटल कक्ष में पहुंचे, उन्होंने उनके पार्थिव शरीर को इसी अवस्था में देखा।

एक अनथक यात्री के यज्ञमय जीवन की यह थी पूर्णाहुति। बाद में उनके इस लिखित व्याख्यान को, जिसका विषय था, ''सांस्कृतिक गौरव के पुरावशेष'', सम्मेलन में पढ़ कर सुनाया गया।

उनका पार्थिव शरीर उज्जैन ले जाया गया।

डॉ. वाकणकर जी नहीं रहे, यह समाचार मेरे लिए तो स्तब्धकारी था। वे मेरे मित्र थे, मेरे अग्रज थे। मैं उनसे कुछ भी कह सकता था, चर्चा कर सकता था। ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होने पर भी वे मुझसे बराबरी का ही व्यवहार करते थे।

मेरे सामने समस्या खड़ी हो गई, उस पाण्डुलिपि का क्या करूंगा? क्या उसे छोड़ दूं? नहीं, यह उचित नहीं होगा। आखिर उनकी अन्तिम स्मृति स्वरूप यही तो है मेरे पास। क्यों न मैं उनकी स्थायी स्मृति के रूप में इसे सबके सम्मुख प्रस्तुत करूं। ऐसी स्मृति जो आने वाली पीढ़ियों के हृदयों को भी प्रकाशित करे।

अतः मैंने उस पाण्डुलिपि को, वह जैसी भी थी, उसी रूप में १९८८ में ही प्रकाशित कर दिया। ४८ पृष्ठों की इस पुस्तक का शीर्षक है – ''वैदिक आर्य समस्या : एक चिन्तन''। इस पुस्तक में सिंगापुर वाला उनका अन्तिम लिखित व्याख्यान भी जोड़ दिया। उनके प्रति मेरी यहीं विनम्र श्रद्धांञ्जलि थी।

१९९७ में बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति दिल्ली ने निर्णय किया कि प्रतिवर्ष किसी एक ऐसे विद्वान को पुरस्कृत किया जाए, जिसने भारतीय इतिहास व संस्कृति के क्षेत्र में कोई मौलिक कार्य किया हो। इस पुरस्कार का नाम वाकणकर जी के ही नाम से रखा गया- '' डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर राष्ट्रीय पुरस्कार''। फलतः प्रथम पुरस्कार १९९८ में दिया गया और मार्च २०१९ को इक्कीसवां पुरस्कार दिया गया। इस पुरस्कार में प्रशस्ति-पत्र तथा ५१०००/– (इक्यावन हजार) रुपये की राशि दी जाती है।

वाकणकर जी को अपने जीवन काल में ही सब प्रकार की प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि मिली। लेकिन वे इस सबसे अलिप्त रहे। उन्हे 'पद्मश्री' की उपाधि प्रदान किए जाने की घोषणा हुई, लेकिन उन्होंने किसी को बताया नहीं। वे दिल्ली आने पर झण्डेवाला ही ठहरते थे। लेकिन 'पद्मश्री' के समय वे झण्डेवाला आए ही नहीं, इसलिए मुझे भी पता नहीं लगा। बाद में मैंने जब उनसे कहा कि अपने बताया ही नहीं, तो उन्होंने उपेक्षा वाले भाव से कहा – ''अरे! यह कोई बताने वाली बात थी।''

एफ १०९, सैक्टर २७
नोएडा - २०१३०१

यात्रा-वृत्तान्त

ब्रह्मपुत्र के किनारे कामाख्या देवी सान्निध्य में इतिहास चिंतन

डॉ. सूरत ठाकुर

कलियुगाब्द ५१२० विक्रमी संवत् २०७५ ईस्वी सन् २३ से २५ दिसंबर २०१८ को आसाम की राजधानी गोवहाटी में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का ११वां अखिल भारतीय महा अधिवेशन हो रहा था। इसमें पूरे देश से योजना से जुड़े पदाधिकारी सदस्य एवं इतिहासकार आमंत्रित थे। इतिहास के इस महाकुम्भ का 'पुरुषार्थ चतुष्टयः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (एक ऐतिहासिक परिप्रेक्षय) मुख्य विषय था।

इस महा अधिवेशन में भाग लेने वाले हिमाचल से मेरे सहित नेरी शोध संस्थान के निदेशक चेतराम गर्ग, डॉ. सुरेश कुमार सोनी, इंद्र सिंह डोगरा, डॉ. दीन दयाल वर्मा, बाबूराम गोयल, नीरत सिंह, देवेंद्र गौड, राजेश चौहान, एस ठाकुर और डॉ. योगराज आदि हम ग्यारह प्रतिनिधि थे।

हमारा जाना हवाई जहाज से हुआ। जहाज जब आसाम के ऊपर से उड़ रहा था तो वहां के गांवों के आसाम शैली के बने छोटे-छोटे मकान खिलौनों जैसे दिखने लगे। मकानों की ढलुवाँ टीन की छतें दिख रही थी। आसाम में बहुत वर्षा होती है इसलिये अधिकांश घर ढलुवाँ छत शैली के बने होते है ताकि वर्षा का जल एकदम बाहर निकल सके। नारियल के पेड़ ऊपर से झुरमुट की तरह बगीचे का सा आभास दे रहे थे। इसके अलावा इमली, नीम, बरगद, साल, खोकन, पोमा, तितासोपा, बादाम, होल्क, सगों और बुला के पेड़ इस धरती को हरा-भरा बनाए हुए थे।

गोाहाटी के बीच से ब्रह्मपुत्र नदी बहती है। कहते हैं हिमाचल प्रदेश से बहने वाली सतलुज और आसाम से गुजरने वाली ब्रह्मपुत्र मानसरोवर के पास राक्षरा ताल से उत्सर्जित हुई है। तिब्बत में इसे सांगपो कहते हैं। अरुणाचल प्रदेश में प्रवेश करते ही इसका नाम सियांग हो जाता है। थोड़ा आगे जाकर यह दियांग कहलाती है। अरुणाचल में इसमें लोहित उपनदी के मिलन के कारण इसका नाम लोहित हो जाता है। आसाम की सीमा में प्रवेश करते ही यह ब्रह्मपुत्र कहलाती है। वहां से बांग्लादेश में पहुंचने पर इसका नाम हो जाता है जमना और पदमा। बंगाल की खाड़ी में यह मेघना कहलाई जाती है। इसका नाम ब्रह्मपुत्र क्यों पड़ा। इस बारे में किंवदंती है कि ब्रह्मा के वर से शांतनु मुनि की भार्या के गर्भ से एक जलस्वरूप पुत्र ने जन्म दिया। कालांतर में जलधारा के रूप में प्रवाहित होने के कारण यह ब्रह्मपुत्र कहलाया। (जब ये दोनों नदियां बरसात के मौसम में अपना विकराल रूप धारण करती हैं तो इन के तटों पर रहने वाले बहुत से वाशिंदों को जख्म दे जाती हैं।)

ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर बसे गोवहाटी का पुराना नाम प्राग्ज्योतिषपुर है। कालिका पुराण में एक श्लोक में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राग नक्षत्रम् मसर्ज हरू।

ततरू प्राग्ज्योतिषारेव्यम शकरपुरी समा।।

अर्थात् यहां बैठकर ब्रह्मा ने नक्षत्रों और जगत की सृष्टि की थी। गोवहाटी का शाब्दिक अर्थ गुवा की हाट या हाटि है। असमिया में कच्ची सुपारी को गुवा कहते हैं। गुवा शब्द संस्कृत के गुवाक का देशज रूप है और इटाखुली उसी क्षेत्र को कहते हैं। यहीं लाचित बरफुकन का इटाखुली किला था।

एयरपोर्ट से ही महा अधिवेशन की व्यवस्था से जुड़े स्थानीय कार्यकर्ता नितिन से संपर्क किया। उन्होंने कहा कि वे गेट के बाहर हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने एक छोटी मारुति गाड़ी में हमें बिठाया और टैक्सी बीच शहर में संगानेरिया सराय की ओर दौड़ने लगी। मार्ग में कंकरीट के मकान अपने शहरीकरण की गवाही दे रहे थे। कुछ वर्ष पहले तक उत्तरपूर्व के बारे में नकारात्मक तस्वीर पेश की जाती थी, जब यहां पर बोडो युवाओं द्वारा आंदोलन किया जा रहा था। परंतु अब ये क्षेत्र शांत है। असम की पूरी जनसंख्या का ४५ प्रतिशत भाग बोडो का ही है। इनकी दो शाखाएं कोच राजवंश और कछार राजवंश थीं। बोडो के पांच समूह हैं – बोड़ो, कछारी, राभा, सोनवाल और चुटिया। वर्तमान मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल कछारसमूह से संबंध रखते हैं। शिव उपासक ये लोग शिव को 'बाथौ बूढा' और पार्वती को 'बाथौ बूढ़ी' के नाम से आज भी पूजा करते हैं। बाथौ का एक अर्थ पंच तत्व भी है। बा माने पांच, थौ माने तत्व।

आसाम को ब्रह्मपुत्र और बराक घाटियों के अलावा मिकिर कार्बी, आंगलांग और उत्तरी कछार के पहाड़ उपहार में मिले हैं। यह शस्य श्यामला शांत एवं सुंदर धरती है। यह कामरूप की भूमि है, इसलिये एक ज़माने में अन्य प्रांतों की महिलाएं अपने पति को इस प्रदेश में अकेले जाने से रोकती थी ताकि इस प्रदेश की यौवनाएं उन्हें अपने मोह जाल मे फंसाकर वशीकरण मंत्र से भेड़-बकरी न बना दे। यहीं की रानी मृणावती ने अपने कामकेशों की घनी छांव तले गुरु मछिंदरनाथ की तप साधना को भंग किया था। इसी तरह पाण्डु पुत्र अर्जुन भी इस भूमि की राजकुमारी नागा भूमि की उलूपी और इरावती, मणिपुर की राजकन्या चित्रंगदा, और मेघालय की राजकुमारी प्रमिला से विवाह कर बैठे थे।

आसाम देश के उत्तर-पूर्व में स्थित सात राज्यों में सबसे बड़ा राज्य है। उत्तरपूर्व के सातों राज्यों को सात बहनों के नाम से जाना जाता है। यहां की भाषा असमी है जो बांग्ला के अधिक नजदीक है। इनकी स्क्रिप्ट भी एक जैसी है। टैक्सी वाला बता रहा था कि यहां काफी संख्या में बंगला देश से आये हुए शरणार्थी रह रहे हैं। इसलिये बांग्ला बोलने वालों की अच्छी खासी संख्या है।

आसाम की भाषा असमिया को देश की आठवीं सूची में स्थान प्राप्त है। यहां के बहुत से साहित्यकार राष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक अलग पहचान बना चुके हैं। असमिया भाषी च और छ की ध्वनि स करते हैं। अतः सरकार सिपाही, पुलिस, सरदार जैसे शब्दों का मूल रूप में उच्चारण करने के लिये क्रमशः चरकार, छिपाही, पुलिछ, चरदार लिखते हैं। इसी तरह श, स, तथा ष का उच्चारण ह या ख जैसा करते हैं। उदाहरणार्थ संतोष, सहज, असमिया, कृषक, सोमवार जैसे शब्दों को लिखेंगे ऐसे ही परंतु बोलने में क्रमशः हंतोख, हहज, अखमिया, कृखक, होमवार जैसी ध्वनि उचारेंगे। जब असमिया लोग आपस में बतियाते हैं तो उनका वार्तालाप सुनना अच्छा लगता है।

११ वां महाधिवेशन श्रीमन्त शंकरदेव अंतरराष्ट्रीय प्रेक्षाग्रह में २३ दिसम्बर २०१८ को आरम्भ हुआ जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री भैयाजी जोशी मुख्य अतिथि थे। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा कि चतुर्थ पुरुषार्थ का सबके जीवन से संबंध है। भारतीय का विचार अहम का नहीं अपितु वयम का विचार है। वसुधैव कुटुम्बकम का वाक्य इसी का उद्‌घोषक है। परस्पर अवलंबन की भावना हमारे सभी क्रिया-कलापों में दिखाई देती है। उनके साथ विशिष्ट अतिथियों में राजन गोगोई, रेल राज्यमंत्री भारत सरकार, श्री सर्वानंद सोनोवाल मुख्यमंत्री असम, प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल, राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, श्री जगदीश मुखी राज्यपाल आसाम भी उपस्थित रहे। महाअधिवेशन का मुख्य विषय चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के आयाम पर गंभीर विमर्श किया गया। यद्यपि यह विषय आध्यात्मिक लगता है परन्तु भारत का इतिहास पुरूषार्थ चतुष्टय के इर्द-गिर्द ही घूमता है। राष्ट्रीय संगठन मंत्री डा. बालमुकुंद पांडे जी का कहना था कि इतिहास स्वयं में ज्ञान है। ज्ञान है तो स्वतः ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष समझ में आ जाएगा। इतिहास जानने का सबसे अच्छा स्रोत पर्यटन है इसीलिये शंकराचार्य ने पूरे भारत मे चार धाम स्थापित करके लोगों को वहां जाने के प्रेरणा दी।

जहां श्रीमंत शंकर देव सभागार में अधिवेशन था, उसके बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। इस प्रदेश में उनका बड़ा सम्मान है। श्रीमंत शंकरदेव आसाम के आध्यात्मिक गुरु रहे हैं। उन्होंने यहां की कला संस्कृति को जन-जन तक पहुंचाने का श्रेष्ठ कार्य किया है। शंकर देव ने भक्तिमूल्क सत्रिया नटिया की नई विधा का विकास किया। सन् १४४९ में जन्मे श्रीमन्त शंकरदेव महान चिंतक, समाज सुधारक, लेखक, नाटककार तथा चित्रकार थे। उनकी लिखी पुस्तकों में भक्ति रत्नाकर, भक्ति प्रदीप व अनादि पाटन प्रमुख हैं। इसके अलावा राम विजय, रुक्मणि हरण, पारिजात हरण आदि अंकिया नाटक आज भी नाटककारों द्वारा अभिनीत किये जाते हैं। उनके शिष्यों में माधव देव ने गुरु परंपरा को आगे बढ़ाकर स्थान-स्थान पर नामघरों की स्थापना की है। शंकरदेव ने देश को बृहतर भाषाई आधार देने के लिये ब्रजावली भाषा बनाई और उसमें अनेक ग्रंथ रचे। उनके परवर्ती अनुयायियों द्वारा चलाये गये शिशु विद्यालय आज भी असम में शिक्षा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इनके अलावा माधवदेव, दामोदर देव जैसे अनेक संतों ने आध्यात्मिकता के साथ यहां की कला-संस्कृति को एक अलग पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इसी तरह आसाम के लोग वीर पुरुष लाचित बरफुकन को बहुत सम्मान देते है। अपने उद्धबोधन में आसाम के मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल ने वीर पुरुष लाचित बरफुकन को याद करते हुए बताया कि उन्होंने उत्तर पूर्व में १७ बार मुगलों को हराया था और इस भूमि पर पांव पसारने नहीं दिया। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के अध्यक्ष डा. सतीश चंद्र मित्तल ने कहा कि इतिहास का मूल संस्कृति में निहित है। हमारा धर्म जोड़ता है, तोड़ता नहीं। कर्म को ही हम धर्म मानते हैं। कौटिल्य ने सुखस्य मूलं धर्म अस्ति का महत्व बताया है।

अधिवेशन में कई सत्रों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के बारे में इतिहासकारों और विद्वानों ने

विस्तृत चर्चा की। सार रूप में यही निष्कर्ष निकला कि जीवन में इन चारों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुण्य-पाप की भावना सभी धर्म ग्रंथों में है। जो कर्म भगवान के अधिक समीप ले जाये वह पुण्य, उससे जो विमुख करा दे, वही पाप है। इस अधिकार भेद और यश भावना के समान ही हिंदू संस्कृति का एक परम् आवश्यक सिद्धान्त है--अनासक्ति अथवा निष्कामता। जो-जो कर्म किया जाय, वह परमेश्वर प्रीत्यथ ही हो, उसमें कोई आसक्ति या कामना न हो। इससे कर्म की भूमिका बहुत ऊंची हो जाती है और उसकी सिद्धि भी अपूर्व होती है। धर्म का पालन अनुशासन से ही संभव है। अनुशासनहीन समाज या व्यक्ति का पतन के गर्त में गिरना अवश्यंभावी है। हमारे सत्कर्म ही प्रारब्ध बनते हैं और वही दूसरे जन्म के ऐश्वर्य, वैभव व सुख के कारण हैं। नास्तिक भी मानते हैं कि कल्याण के लिए सत्य, दया, त्याग, परोपकार आदि धर्म आवश्यक है। जिस समाज में ये न होंगे वह समाज निश्चय कलहपूर्ण रहेगा और नष्ट होगा। उसका अभ्युदय संभव नहीं।

प्रत्येक समाज, प्रत्येक जाति, प्रत्येक पदार्थ अपने नियमों पर चलकर धार्मिक हो सकता है। अतः अपने कार्य को ईमानदारी से करके अर्थ ग्रहण किया है और उसे पुण्य कर्म में लगाया है, वही असली धर्म है। इसके बाद ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। इतिहास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों कर्मों को उल्लेखित करने में महत्वपूर्ण भमिका निभा सकता है ताकि भावी पीढ़ी उससे प्रेरणा लेकर समाज व राष्ट्र हित में अपना योगदान दे सके।

संध्या में श्रीमंत शंकरदेव द्वारा चलाये गए विद्यालयों के विद्यार्थियों ने आसाम के पारंपरिक लोकनृत्यों की प्रस्तुति देकर सबका मन मोहा। इनमें सबसे ज्यादा प्रभावित किया बिहू नृत्य ने। कमर पर दोनों हाथ रखकर नाचती बालाओं ने रंगाली बिहू पेश कर के अद्‌भुत समा बांधा। आसाम में मेष सक्रांति के दूसरे दिन सौर वर्ष प्रारम्भ होता है, जो प्रायः १४ अप्रैल को पड़ता है। इस दिन से यहां बिहू नाचने की परंपरा शुरू होती है। बिहू के स्वागत के लिए एक गीत यहां बहुत प्रचलित है –

बिहलेई केई दिन आसे होमोनिया
बिहू लोइ केई दिन आसे।
उजोनि नामोनि मारुके माकुटी
बिहू लेइ सारीदिन आसे।

अर्थात् बिहू के कितने दिन रहे ओ प्रीतम! बिहू के कितने दिन रहे। बिहू के चार तो दिन रहे।

बिहू का अर्थ है – प्रकृति का नृत्य। बोड़ो जनजाति में पृथ्वी व प्रकृति को बहुम कहते हैं। वसंत आगमन से आये ऋतु परिवर्तन से प्रकृति मानो रुनझुन करती नाच उठती है। इसे रूपक मानकर बिहू शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। एक मतानुसार विषुवत रेखा से विषुव और विषुव से बिशु बना। जिससे बिहू शब्द आया। असमिया में व का उच्चारण ब और ष की ध्वनि ह हो जाती है। इसलिए बिशु का बिहू हुआ।

बिहू का प्रचलन पहले ऊपरि आसाम में ही था। कालांतर में बिहू को आहोम शासकों ने राजकीय दर्जा दिया। सात दिन तक चलने वाले बिहू का आरम्भ गोरु बिहू से होता है। गोरु यहां

गोधन से माना जाता है। गोरु बिहू के साथ रंगाली बिहू भी होता है। इसके दूसरे दिन मानुह बिहू होता है। इसमें चावल के विभिन्न व्यंजन पकाए जाते हैं। बड़ों के पांव छूकर आशीर्वाद लिया जाता है। इस अवसर पर श्रृंगार और प्रेम रस के हुसोरि गीतों को बिहू गीत या बिहू नाम कहा जाता है। वास्तव में यह प्रेम रस का नृत्य गीत शैली है। ढोल, झांझ, डबा, मादल, पेपा, गगना आदि लोकवाद्यों की धुन पर बिहू का लास्य देखते ही बनता है।

बिहू के दिनों में युवाओं को अपने भावी जीवन साथी को चुनने की छूट होती है। दोनों विवाह को साकार करने के लिये इस प्रकार गाते हैं –

बहागर बिहुते पूर्णिमार रातिते
पातिम तोरे मोरे बिया।
दूयो एकेलगे घरे पाति खाम
मिलाम ऐ दुखनि हिया।।

अर्थात् बैसाखी बिहू में पूनम की रात में रचाएंगे तेरा-मेरा ब्याह, फिर घर बना दोनों संग खाएंगे मिलाकर दोनों के हिया। बिहू पर आपसी आदान-प्रदान करने के वस्त्र को बिहुवान कहा जाता है। बिहुवान के रूप में अधिकतर फुलाम गमछा दिया जाता है। वशिष्ट अतिथियों का सत्कार आसाम में गमछे और जापि पहनकर किया जाता है। अधिवेशन के आरंभ में सभी प्रतिनिधियों का स्वागत इसी तरह के गमछे से हुआ था।

इस कार्यक्रम में सत्य नृत्य भी प्रस्तुत किया गया। यह एक शास्त्रीय नृत्य की विधा है जो ५०० वर्ष पुरानी है। इस नृत्य विधा को जीवित किया है श्रीमन्त शंकरदेव जी ने। लास्य प्रधान इस नृत्य में भावों की सुंदर ढंग से अभिव्यक्ति होती है। नृत्य प्रस्तुति डा. भूपेन हज़ारिका के गीत पर हुई। असमी संगीताकाश में भारत रत्न भूपेन हज़ारिका का योगदान अद्वितीय है। हिंदी फिल्मों में भी उनके द्वारा संगीतबद्ध फिल्मी गीतों ने असमिया संस्कृति के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं को सशक्त माध्यम से उजागर किया है। इस गीत के माध्यम से पूरे उत्तरपूर्व की संस्कृति की झलक देखने को मिली। शंकरदेव शिशु निकेतन हिंगरवारी के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत इन नृत्यों ने अदभुत समा बांधा। कई बार हम लाखों खर्च करके व्यावसायिक कलाकारों को बुलाते हैं जबकि विद्यालयों के विद्यार्थी उनसे अच्छा और नए अंदाज में कार्यक्रम करने लगे हैं। इसका प्रमाण यहां पर इन बच्चों ने अपने प्रदर्शन से दे दिया। एक अन्य लास्य प्रधान घोरताल नृत्य करताल, डफ और पखावज के ताल पर यह नृत्य किया गया। इसी तरह बंगदुम्बा बाई लोकनृत्य बोड़ो संस्कृति की झलक दिखाये हुए था। दूसरी संध्या आसाम में स्थित सेना के जवानों ने देश भक्ति के गीतों ने राष्ट्रप्रेम की भावना को जागृत किया।

२५ दिसंबर को समापन सत्र के मुख्य अतिथि सह सरकार्यवाह माननीय सुरेश सोनी जी थे। उन्होंने अपने उद्बोधन में इतिहास लेखन के संबंध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होंने कहा कि हम लोग अनादि, अतीत ,वर्तमान और भविष्य की संस्कृति के उपासक हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इतिहास के

परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण अवयव हैं। इतिहास में आसुरी और दैवी प्रवृतियां एक साथ चलती हैं। जिसमें अर्थ और काम को लिया जाय तो, वो आसुरी प्रवृति की ओर ले जाती है। इसी तरह यदि धर्म की मर्यादा के अनुसार अर्थोपार्जन किया जाय तो निश्चित ही मोक्ष की प्राप्ति होगी और दैवी शक्तियां प्रभावी होंगी। उन्होंने यह भी बताया कि मानवता का ऋग्वेद ही अतीत था और भविष्य भी ऋग्वेद हैं। आसाम में इतिहास संकलन समिति का अधिवेशन इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि इस धरती के वीर सपूतों ने आक्रमणकारियों को यहीं पर रोका और उनका अंत किया।

समापन समारोह के बाद दोपहर बाद हम कामाख्या देवी के दर्शनों को निकले। उस दिन वहां खूब भीड़ थी। पता चला कि इस दिन कामेश्वरी और कामाख्या का विवाह होता है। असमिया भाषा मे इसे चनींद बियाह कहा जाता है। अधिवास के दिन इस विवाह का शुभारंभ किया जाता है। यह विवाह तीन दिन तक चलता है। चनींद विवाह की परंपरा आहोम राजा के समय से चली आ रही है। विवाह के लिये मंदिर परिसर को पुष्पों और लड़ियों से सजाया गया था। कामाख्या धाम में हर साल पूस मास की द्वितीय व तृतीय तिथि में पुहंन विवाह परंपरा पूरी तरह असमिया रीति-रिवाज़ से सभी नियमों का पालन करते हुए की जाती है। इसमें अधिवास शादी और बासी विवाह की रस्म निभाई जाती है। इसी तरह जून के अंतिम दिनों में चार दिन तक वार्षिक अम्बुबाची त्योहार मनाया जाता है। इस दौरान मंदिर का गर्भगृह बंद किया जाता है। माना जाता है कि देवी इस दौरान रजस्वला होती है। यह स्त्री-पुरुष के बीच सामंजस्य का प्रतीक है। आसाम में इस दौरान भूमि खोदना और खेतों में हल चलाना वर्जित होता है। इस दौरान निसंतान दंपति यहां आकर संतान प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। साधु-सन्यासी मंदिर के बाहर भजन-कीर्तन करते हैं। तीन दिन बाद ही गर्भगृह में प्रवेश करने की अनुमति होती है।

सोहलवीं शताब्दी में लिखे योगिनी तंत्र के अनुसार यह पूरा क्षेत्र रत्नपीठ, कामपीठ, स्वर्णपीठ और सौमरपीठ नामक चार पीठों में विभाजित था। नीलांचल पहाड़ी पर समुद्रतल से ८०० फुट की ऊंचाई पर स्थित कामाख्या मंदिर गोहाटी से ८ किलोमीटर की दूर है। गोहाटी कामाख्या देवी के लिये जाना जाता है। यहां के लोगों के लिए मां कामाख्या का मंदिर एक ऊर्जा का केंद्र है। यह सब की कामनाओं का भी केंद्र है। मिथकों में वर्णन आता है कि दाशराज के यज्ञ में पार्वती पति भोले शिव जी का अपमान हुआ था। उससे क्रोधित होकर पार्वती ने अपने आप को कुंड में भस्म किया था, जिसे कंधे पर उठाकर शिव चारों दिशाओं में भटके थे। उसी भटकन में पार्वती के अंग बावन स्थानों पर गिरे थे, जिसमें उसके काम अंग अर्थात मातृ अंग नीलाचल पहाड़ी पर यहीं गोहाटी के पास गिरे थे। शिखर और गुम्बद शैली का कामाख्या मंदिर हर उस पथिक के लिये पर्यटक स्थली है जो आसाम आता है। इस मंदिर में सबसे नीचे अनगढ पत्थर, उसके ऊपर पशुओं के चित्र, उससे ऊपर सामान्य जन, उससे ऊपर काम क्रियाएं करते मनुष्य, उससे ऊपर देव रूप को इंगित करती ललित कलाएं और सबसे ऊपर चरम को दर्शाते कलश सृष्टि के निरन्तर आध्यात्मिक विकास की प्रतीक लग रही थी। विद्वानों ने मनुष्य की नीचे से ऊपर जाने की प्रक्रिया श्रेयस की होती है। इसी तरह जो रुचिकर हो उसे प्रेयस कहा

गया है। अधिकाँश मंदिरों में काम करती क्रियाएं सृष्टि सृजन का प्रतिफलन है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया है। जो अपनी गरिमा में महान हो वह मीत है। क्रूरता पूर्वक व्यवहार न कर सके जो, वह स्त्री है।

विश्वास किया जाता है कि देव शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित इस मंदिर के गर्भगृह में देवी की योनिमुद्रा के दर्शन होते हैं। एक हाथ लंबा और बारह अंगुल चौड़ा यह शिलापट ही मां कामाख्या का योनि मंडल है। इसके नीचे निरंतर जल प्रवाह मान है, जिसे सोने से ढका गया है।

आसाम को परशुराम की मोक्ष भूमि भी कहा गया है। तंत्र साधना करने वालों के लिये यह सबसे महत्वपूर्ण पीठ है। यहां पर रोज़ एक बकरे की बलि देने की परंपरा है। हालांकि कलिका पुराण और योगिनी तंत्र में देवी को मानव बलि देने का संकेत मिलता है। आहोम और प्रताप सिंह और हाजो के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपने आप को देवी को खुश करने के लिये कुरवान किया था। वर्तमान मंदिर में तीन मंडप और एक गर्भगृह। मंदिर दर्शन के लिये ऊपर से नीचे की ओर आना पड़ता है। सीढ़ियों से उतर कर सबसे नीचे गर्भगृह में योनि के दर्शन होते हैं। यही कामाख्या देवी का असली रूप है। क्योंकि यह उत्तरपूर्व का सबसे अधिक पूजा जाने वाला प्रतिष्ठित धाम है, इसलिये सुबह ६ बजे से ही इसके दर्शन करने वालों की भीड़ लगती है। इसके दर्शन हेतु तीन पंक्तियां की व्यवस्था है, जिसमें एक मे सामान्य जन, दूसरे में ५०० रुपये का टिकट लेकर तथा तीसरी लाईन सेना के जवानों के लिये रखी गयी है। जैसे कि अधिकांश मंदिरों में देखा गया है, यहां भी पुजारियों द्वारा पूजा विशेष करवाने की व्यवस्था है। यही उनकी रोजी रोटी का साधन भी है। वैसे तो गर्भ के दर्शन ही भाग्यशाली माने जाते हैं । यदि किसी को जल्दी हो तो वह मूर्ति के दर्शन करके ही लौट जाता है। कृष्णा नौमी से शुक्ल नौमी तक २५ दिनों में यहां पर दुर्गा पूजा का विशेष महत्व है। कामाख्या दस महाविद्याओं काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्मस्तिका, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला का संयुक्त रूप भी माना जाता है। जिनमें त्रिपुरा सुंदरी, मातंगी, और कमला मुख्य मंदिर में अवस्थित हैं, जबकि बाकी सात मंदिर के बाहर प्रतिष्ठित हैं। योगनी तंत्र के अनुसार श्रुति है कि कामदेव ने इस मंदिर को स्थापित किया था। कहते हैं जब कामदेव ने भगवान शिव की साधना को भंग किया था, तब शिव ने क्रोधित होकर उसे अपने नेत्रों द्वारा क्रोध की अग्नि से भस्म किया था। उसे मुक्ति तभी मिली थी, जब उसने वहां मंदिर बनवाया था, जहां सती की योनि गिरी थी।

कामाख्या मंदिर में भैंस, बकरी आदि की बलि देने की परंपरा है। नेपाल के राज परिवार वाले इसे अपनी कुलदेवी मानते हैं। नए उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक होने पर वे यहां आकर पूजा अर्चना करते हैं। कामाख्या देवी मंदिर के अतिरिक्त यहां पर वसिष्ठ मंदिर, तिरुपति बाला सूंदर मंदिर , संग्रहालय, बौटैनिकल गार्डन आदि स्थान दर्शनीय हैं।

अधिवेशन के बाद २६ दिसंबर को हमने शिलांग जाने का कार्यक्रम बनाया और प्रातः भोर होते ही तीन टैक्सियां किराये पर लेकर शिलांग की ओर चल पड़े। मार्ग में पोंगयोंग झील का अवलोकन करते हुए लगभग ११:०० बजे शिलांग पहुंचे। उत्तरपूर्व के इन प्रान्तों में ईसाईयों की संख्या बहुतायत में है। जब क्रिस्चियन मिशनरी यहां आए तो लोगों ने ईसाई बनना मंजूर नहीं किया। १८८१

तक केवल २००० लोगों को ही ईसाई बनाया जा चुका था। किंतु आज अधिकांश लोग ईसाई बन चुके हैं। इसलिये क्रिसमस से तीन दिन पूर्व से ही गिरजाघरों को सजाया जाता है। शेष भारत से भी ईसाई लोग उत्तरपूर्व के गिरिजा घरों में आते हैं। इस दौरान आसाम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम में दफ्तरों में अवकाश रहता है शिलांग में उस दिन अवकाश था। इसलिये बाजार में अधिक भीड़ नहीं थी। यहां डंन बोस्को संग्रहालय देखा। जो ईसाईयत के साथ-साथ उत्तरपूर्व की संस्कृति को दर्शाता है। सात मंज़िला भवन में अलग-अलग विधाओं की वीथिकाएँ सलीके से सजी हुई थी।

एक बात हमने महसूस की कि यद्यपि इस क्षेत्र में ईसाई सम्प्रदाय को मानने वाले लोग हैं, फिर भी ये अपनी लोक परंपरा को नहीं भूले हैं। लोकरीति से सभी उत्सवों को मनाते हैं। खाना, रहना, पर्व, त्योहार, वस्त्र, आभूषण आदि सभी मे लोक कला की झलक देखी जा सकती है। प्रागेतिहासिक काल मे यहां के लोगों का शिकार खेलना और कृषि करना मुख्य व्यवसाय रहा है। संग्रहालय में शिकार के लिये प्रयुक्त हुए तीर-कमान के कई रूप देखने को मिले। कृषि के ढलानदार खेतों में पानी की सिंचाई करते हुए मण्डल और आकृतियां इसकी गवाह थी।

संग्रहालय देखने के बाद हम बर्ड जलाशय की और गए। यह मेघालय के पर्यटन विभाग की देखरेख में सकून से कुछ पल गुज़ारने हेतु सुन्दर स्थल है। यहां पर झील में बतखों के झुंड आकर्षण के केंद्र हैं। झील के चारों ओर अर्णकिड प्रजाति के फूल करीने से उगाए गए हैं, जो यहां पर सकून के कुछ पल गुजारने को विवश करते हैं। झील की परिक्रमा करने के बाद एक भोजनालय में दोपहर का भोजन किया। हम सब शाकाहारी थे, इसलिये रोटी, दाल, सब्जी का आर्डर दिया। वैसे उत्तरपूर्व के अधिकांश लोग मांसाहारी हैं। शाकाहारी भोजन बहुत कम स्थानों पर मिलता है। यहां के बाजारों में जगह जगह मांस की दुकाने देख कर इनके मांसाहारी होने की पुष्टि हुई। शिलांग की खूबसूरती से अभिभूत होकर ही अंग्रेजों ने इसे पूर्व का स्कॉटलैंड कहा था। यहां की गलियों में मुस्कान बिखेरती खासी महिलाएं फल सब्जियों को बेचने में माहिर हैं। जिन्होंने 'दोख' नामक वस्त्र पहना था, ऐसा ही वस्त्र हिमाचल प्रदेश के कुल्लू में पट्टू या दोहड़ के नाम से पहना जाता है। दोहड़ ४ फुट चौड़ा तथा ८फुट लंबा खड्डी जिसे 'रच्छ' कहा जाता है पर बुना जाता है।

उत्तरपूर्व में वर्षा अधिक होती है। यहां के चेरापूंजी में विश्व मे सबसे अधिक वर्षा होती है। मार्च से लेकर अक्तूबर तक खूब बारिश होती है। इसलिये यहाँ की पहाड़ियों में हरियाली की चादर हमेशा बिछी हुई रहती है। भारत में सबसे घने जंगल इसी क्षेत्र में ही हैं। भोजन करने के बाद एलीफैंटा वाटर फल देखा। वहां पर तीन स्थानों पर हाथी की सूंड सदृश प्राकृतिक झरने मन को लुभाते हैं।

क्रिसमस की छुट्टियों के कारण बाजार बंद थे। शैर शिलांग साढ़े पांच हजार फुट की ऊंचाई पर प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण शहर है। यहां पर सेना के कॉंटानेमेन्ट क्षेत्र उत्तरपूर्व की सीमाओं की सुरक्षा की लिये प्रमुख भूमिका में है। कभी उत्तरपूर्व में जाना हो तो शिलांग अवश्य घूमना चाहिये। चेतराम गर्ग शिलांग में ही ठहर गये और दूसरे सभी साथियों ने अंधेरा होने से पूर्व टैक्सी ड्राइवर को गाड़ी गोहाटी की ओर मोड़ने का आदेश दिया।

रात आसाम के सर्किट हाऊस में उत्तरपूर्व के आठ प्रान्तों के भारतीय जनता पार्टी के संगठन मंत्री अजय जम्वाल के सौजन्य से बुक थे, में रहे। एक शिक्षक होने का बड़ा लाभ यह है कि जहां कहीं भी कोई शिष्य जिस भी पद पर हो, वह गुरुभक्ति का परिचय अवश्य देता है। अजय जम्वाल को राजकीय महाविद्यालय मंडी में १९८५-८७ में पढा चुका हूं। जो इस सफर में हमारे लिये सहायक हो गए। रात सर्किट हाउस में गुज़ारी और अगली सुबह अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

कार्यकारी अध्यक्ष
भा. इ. सं. समिति हिमाचल प्रांत
गांव परगानू, डाकघर भून्तर जिला कुल्लू हि.प्र.

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बंधित विवरण

फार्म -४ (नियम ८ देखिए)

. प्रकाशन स्थल	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी
. प्रकाशन तिथि	:	अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर, जनवरी माह का प्रथम सप्ताह
. मुद्रक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर- हिमाचल प्रदेश।
. प्रकाशक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर- हिमाचल प्रदेश।
. सम्पादक का नाम	:	डॉ. राकेश कुमार शर्मा
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर- हिमाचल प्रदेश।
. उन व्यक्तियों के नाम व पत्ते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर- हिमाचल प्रदेश।

मैं चेतराम प्रकाशक एवं मुद्रक इतिहास दिवाकर एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य है।

हस्ता/-
प्यार चन्द परमार,
प्रकाशक
दिनांक ३१ मार्च, २०१९

ध्येय पथ

राष्ट्रीय परिसंवाद - पश्चिमी हिमालय में पुरातात्त्विक अन्वेषण

डॉ. अंकुश भारद्वाज

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी एवं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् भारत सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में पश्चिम हिमालय में पुरातात्त्विक अन्वेषण (Exploring Archaeology in Western Himalayas) विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन कलियुगाब्द ५१२० विक्रमी संवत् २०७५, माघ शुक्ल १०-११, शक् संवत् १९७१ (१५-१६ फरवरी, २०१९) को ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में आयोजित किया गया। इस राष्ट्रीय परिसंवाद में देश भर से आए कुल १२३ विद्वानों का पंजीकरण हुआ जिनमें से ५५ विद्वानों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इस राष्ट्रीय परिसंवाद का उद्घाटन सत्र प्रातः ११.०० बजे माधव भवन सभागार में हुआ। कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में मुख्यातिथि केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला हि.प्र. के कुलपति प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री रहे व कार्यक्रम की अध्यक्षता भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के निदेशक डॉ. राजेश कुमार ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला के कुलपति प्रो. सिकन्दर कुमार, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के केन्द्रीय कार्यकारणी सदस्य एवं निदेशक शोध संस्थान नेरी श्री चेतराम गर्ग तथा शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी मंचासीन रहे।

कार्यक्रम का शुभारम्भ मां सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्ज्वलन और पुष्पाञ्जलि प्रदान कर मंचासीन अतिथियों ने किया तथा प्रो. शशि शर्मा ने सरस्वती वन्दना का गायन अपने मधुर स्वर से सभागार में उपस्थित विद्वानों का मन मोह लिया। इतिहास पुरुष का वाचन एवं संकल्प पाठ संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय चकमोह डॉ. ओम दत्त सरोच ने किया।

शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी एवं स्वागत अध्यक्ष श्री महेश चन्द गुप्ता ने मंचासीन अतिथियों का शॉल और टोपी प्रदान कर स्वागत किया। शोध संस्थान के वैचारिक पक्ष के निदेशक डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने हिमालयी क्षेत्र में पुरातात्त्विक अन्वेषण विषय पर किए जाने वाले इस राष्ट्रीय परिसंवाद के संदर्भ में नेरी शोध संस्थान का चिन्तन एवं उद्देश्य की संक्षिप्त जानकारी दी और इसी के साथ डॉ. अंकुश भारद्वाज परिसंवाद आयोजन सचिव ने राष्ट्रीय परिसंवाद की पूर्ण जानकारी विद्वानों के समक्ष रखी। राष्ट्रीय परिसंवाद के पहले दिन मंचासीन विद्वानों द्वारा स्मारिका का विमोचन किया व 'श्रीमद्भागवत पुराण कालीन इतिहास' पुस्तक का लोकार्पण किया गया।

परिसंवाद का बीज वक्तव्य डॉ. विवेक डांगी ने दिया। उन्होंने भारतीय प्राचीन हड़प्पा सभ्यता तथा सिन्धु सरस्वती की और हिमालय क्षेत्र की नदी घाटियों पर और अधिक शोध किए जाने

की संभावनाओं और आवश्यकता पर प्रकाश डाला। यह तभी संभव होगा जब हम हिमालय क्षेत्र के पुरातात्त्विक अवशेषों को संरक्षित किए जाने की दिशा में विद्वानों का ध्यान आकर्षित करेंगे। प्रो. विवेक डांगी के बीज वक्तव्य के उपरान्त इस राष्ट्रीय परिसंवाद की दो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां एवं विशेषताओं ने विद्वानों का ध्यान अपनी और आकर्षित किया। पहला शिमला विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग (आईसोडोल) में प्रो. अजय श्रीवास्तव द्वारा संग्रहित राखी गढ़ी से प्राप्त अवशेष और दूसरा हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिला के हरितल्यांगर से प्राप्त करोड़ों वर्ष पुराने शैल जीव अवशेष जो वहीं के स्थानीय निवासी श्री सोहन लाल शर्मा जी की २५ साल की तपस्या और जिज्ञासा के कारण प्राप्त हुए हैं। ये सभी अवशेष यहां विद्वानों के दर्शन के लिए रखे गये थे। उद्घाटन सत्र में ही इन दोनों विद्वानों ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में इन अवशेषों की जानकारी दी। प्रो. अजय श्रीवास्तव ने २५ वर्ष पूर्व जब वह दिल्ली पाञ्चजन्य साप्ताहिक में पत्रकार के रूप में काम करते थे उस समय उन्होंने राखी घड़ी पुरातात्त्विक स्थल पर अनेक बार भ्रमण किया था। वहां से उन्हें अनेक वस्तुएं प्राप्त हुई जिन्हें उन्होंने अपने पास संरक्षित करके रखा हुआ था। नेरी शोध संस्थान में चल रहे कार्य को देखकर उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व की सारी सामग्री शोध संस्थान नेरी के संग्रहालय के लिए प्रदान की। पुरातत्वविद् डॉ. विवेक डांगी ने उनके काल आदि विषयों का निर्धारण किया। प्रो. अजय श्रीवास्तव का सम्मान शॉल और टोपी पहनाकर कार्यक्रम के मुख्यातिथि डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री ने किया। इसी के साथ इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकें जो उनके पास हैं शोध संस्थान नेरी को देने की घोषणा की। विद्वानों के लिए दूसरा कौतूहल और जिज्ञासा का विषय हरितल्यांगर (Anthropological site) से प्राप्त ८ करोड़ वर्ष पुराने हाथी दांत जीवाश्य और ८० लाख वर्ष पुराने चूहे के दांत का मिलना और संग्रहित करना विद्वानों को प्रेरणा देने वाला रहा। श्री सोहन लाल प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत हुए हैं और उनकी रुचि इस प्रकार की खोज के प्रति बहुत पहले से बनी हुई थी। हाथी दांत तो उन्हें अपने घर के पीछे ही मिला था जब वह एक टेंक बनाने के लिए जमीन खोद रहे थे।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के निदेशक डॉ. राजेश कुमार ने नेरी में इस प्रकार के आयोजन और विद्वानों के प्रयासों की सराहना की। उन्होंने भारतीय इतिहास को भारतीय चिन्तनधारा पर समझने की बात की। उन्होंने कहा कि भारतीय इतिहास पर बहुत काम किए जाने की आवश्यकता है जिसमें हमारे स्थानीय इतिहास का विशेष महत्त्व है। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् की राष्ट्रीय योजना में वर्तमान में हरियाणा राज्य को पायलट योजना के अन्तर्गत लिया गया है। हरियाणा राज्य के इतिहास को ग्राम स्तर तक लिखे जाने का प्रयोग किया जा रहा है जिसे हिमाचल प्रदेश और हिमालय के संदर्भ में भी लिया जा सकता है। इतिहास में पुरातत्त्व का विशेष महत्त्व है इसलिए इस राष्ट्रीय परिसंवाद के माध्यम से विद्वानों में नई ऊर्जा और जागृति का संचार होगा। मैं यहां आए हुए विद्वानों से आग्रह करता हूं कि इतिहास विषय पर हम सत्य साक्ष्य के आधार पर अध्ययन एवं शोध करें।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री ने अपने चिरपरिचित अन्दाज में कहा कि जिस भाषा में हमारा इतिहास है उस भाषा को जानने वाले हमारे इतिहासकार नहीं है और जो भाषा हमारे इतिहासकार जानते हैं उसमें भारत का इतिहास नहीं है। यह हमारी बिडम्बना है। इसलिए इतिहास के नाम पर तथाकथित पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा गढ़े गए असत्य और मिथ्या इतिहास का अध्ययन हमारी युवा पीढ़ी को बर्बाद कर रहे हैं। भारत के सही इतिहास को जानने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा सारा प्राचीन ज्ञान संस्कृत भाषा में लिखा गया है। एक और बिडम्बना है कि भारत के इतिहासकार विदेशी लेखक मैक्समूलर द्वारा दिए गए संस्कृत के ज्ञान से प्रेरणा लेते हैं। क्या मैक्समूलर द्वारा अनुवादित ज्ञान द्वारा भारत के इतिहास को समझ सकता है? मैक्समूलर स्वयं अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में समझा था कि जिसके लिए मैंने इस संस्कृति के ज्ञान को समझने का प्रयास किया वह तो अनुचित ही था वास्तव में तो यह ज्ञान विश्व सभ्यता का अक्षय भण्डार है। मैक्समूलर का प्रारम्भिक ज्ञान भारत के ज्ञान को नीचा दिखाना था। मेरे पास केन्द्रीय विश्वविद्यालय में क्या समस्या है? मैं प्राचीन इतिहास विभाग तो खोलना चाहता हूं पर उस प्राचीन इतिहास के प्रोफेसर संस्कृत नहीं जानते। हमें ऐसे विद्वानों की आवश्यकता है जो संस्कृत भी जानते हों और इतिहास की समझ भी रखते हो। अन्यथा वे अंग्रेजों द्वारा विकृत किए गए इतिहास को ही पढ़ाते जाएंगे। वैसे तो मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि इतिहास को कुछ भाषा विज्ञानियों ने बिगाड़ा है। मैं इस राष्ट्रीय परिसंवाद की सफलता की कामना करता हूं। शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी जी ने मुख्यातिथि, कार्यक्रम के अध्यक्ष, विद्वानों, मीडिया तथा सभी प्रियदर्शीयों का अपने मन की गहराई से धन्यवाद किया।

१५ फरवरी को इन्द्र देव कुपित थे। मानो जैसे बादल आज ही बरसना चाहते हों। परन्तु ऐसे मौसम में भी सभी विद्वान बिना कोई प्रवाह किए पूरी लगन से डटे रहे। आवासीय परिसर उत्तम देवी भवन में ठण्ड से बचाव के लिए बड़े-बड़े आग के अलावों की व्यवस्था की गई थी। यहां आग के धूने सुबह से शाम तक लगे हुए थे। समान्तर तीन स्थलों पर तकनीकी सत्र होने के पश्चात् रात्रि को हिमाचल प्रदेश भाषा कला संस्कृति अकादमी के सहयोग से ठाकुर रामसिंह राज्य स्तरीय जयन्ती के उपलक्ष्य पर सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। हिमाचल प्रदेश शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष डॉ. सुरेश सोनी उसके मुख्यातिथि रहे और बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति के महासचिव एवं शोध संस्थान नेरी के निदेशक मण्डल के सदस्य श्री सुरेन्द्र नाथ शर्मा ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। अकादमी के सचिव डॉ. कर्म सिंह ने ठाकुर रामसिंह के राष्ट्र चिन्तन और हिमाचल प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डाला। भिन्न-भिन्न स्थानों से आए लोकगायक एवं कवियों ने विद्वानों का मन मोह लिया। कार्यक्रम का पूरा वातावरण राष्ट्रीयता के भाव से सरावोर हो गया। पुलवामा हमले का रोष और उसके लिए बदला लेने की ललकार प्रत्यक्ष सामने दिखाई दे रही थी। मुख्यातिथि डॉ. सोनी ने अपने संक्षिप्त उद्‌बोधन में कलाकारों की प्रस्तुतियों की प्रशंसा की और महान् इतिहासकार ठाकुर

रामसिंह जी के जीवन से प्रेरणा लेने की बात कही।

फाल्गुन प्रविष्टे ४ (१६ फरवरी २०१९) शोध संस्थान के संस्थापक एवं मार्गदर्शक ठाकुर रामसिंह का जन्मदिवस होने के कारण राष्ट्रीय परिसंवाद के समापन् समारोह के साथ अनेक गतिविधियों के आयोजनों के साथ जुड़ा रहा। आज सूर्यदेव भगवान भी प्रसन्न रहे। मौसम एकदम साफ हो गया था। ''युवा इतिहासकार पुरस्कार'' के लिए ३५ वर्ष से कम आयु के शोधार्थियों ने अपने उच्च स्तरीय शोध पत्रों का वाचन किया। इसके लिए एक उच्चस्तरीय कमेटी का गठन किया गया था। दूसरी और प्रतिवर्ष ठाकुर जी के जन्मदिवस पर हवन यज्ञ का आयोजन उत्तम देवी भवन के प्रांगण में वैदिक मन्त्रोचारण के साथ किया गया। शोध संस्थान अपने प्रगति पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है इस दिशा में संस्थान में शोध छात्रावास खोलने की दिशा में बढ़ा कदम शिलान्यास तक पहुंच गया। हमीरपुर संसदीय क्षेत्र के युवा नेता व सांसद श्री अनुराग ठाकुर के द्वारा आज यह शिलान्यास की रस्म ११.३० बजे देशभर से आए विद्वानों और जनता की मौजूदगी में पण्डित ने शिला पूजन कर पूरी की। शोध संस्थान में भारतीय कालगणना, नेरी शोध संस्थान की विकास यात्रा तथा ठाकुर जी के जीवन दर्शन विषय पर आयोजित प्रदर्शनी का अवलोकन दूसरे दिन के मुख्यातिथि श्री अनुराग ठाकुर और कार्यक्रम अध्यक्ष हिमाचल प्रदेश तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सतप्रकाश बंसल द्वारा किया गया। सभी विद्वानों व अतिथियों ने श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी के १०४वें जन्मदिवस के अवसर पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की। दीप प्रज्जवलन के साथ ही त्रिशा कालेज की छात्राओं ने सरस्वती वन्दना की। तत्पश्चात् मंचासीन महानुभावों द्वारा 'ठाकुर रामसिंह चिन्तन भूमि' इतिहास दिवाकर विशेषांक का विमोचन किया गया। संस्थान के वैचारिक प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने मंचासीन अतिथियों का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। आयोजन सचिव डॉ. अंकुश भारद्वाज ने परिसंवाद की पूरी कार्यवाही पढ़ी। डॉ. ओम प्रकाश शर्मा निदेशक वैचारिक पक्ष शोध संस्थान नेरी ने ठाकुर रामसिंह की चिन्तन भूमि विषय पर अपना शोध पत्र पढ़ा। इतिहास संकलन योजना के केन्द्रीय कार्यकारिणी सदस्य एवं नेरी शोध संस्थान के निदेशक श्री चेतराम गर्ग ने शोध संस्थान की विकास यात्रा पर प्रकाश डाला और कहा कि शोध संस्थान नेरी भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में अतुलनीय कार्य कर रहा है। नये-नये विद्वान शोध संस्थान के साथ जुड़ रहे हैं। आज विद्वानों की टोली और कार्य उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। शोध संस्थान भारत के सांस्कृतिक इतिहास लेखन के लिए कटिबद्ध है। इतिहास मात्र घटनाओं का लेखा-जोखा न होकर मानवीय संवेदनाओं एवं विश्वासों के आधार पर सत्यान्वेषण कर विश्व समुदाय के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार ''एम.एस.अहलुवालिया स्मृति पुरस्कार २०१९'' डॉ. राकेश शर्मा (सहायक आचार्य इतिहास, जनरल जोरावर सिंह राजकीय महाविद्यालय धनेटा, हमीरपुर) को उनके इतिहास के क्षेत्र में किए गए उत्कृष्ट शोध कार्य के लिए प्रदान किया गया।

डॉ. सतप्रकाश बंसल ने इतिहास संकलन योजना तथा नेरी शोध संस्थान के कार्य की प्रशंसा

की। उन्होंने कहा कि ठाकुर रामसिंह जी हमारे मार्गदर्शक थे। उन्होंने भारतीय इतिहास के सही ज्ञान को आगे बढ़ाया जिसके परिणामस्वरूप ही आज दुनिया हमारे विचार और दर्शन को मानने लगी है। ऐसे आयोजन इतिहास के पन्नों को खोलने में सहायक होंगे। उन्होंने घोषणा की कि हिमाचल प्रदेश तकनीकी विश्वविद्यालय हमीरपुर में ठाकुर रामसिंह पीठ खोली जाएगी जिसमें शोध कार्य किया जाएगा। इससे नेरी शोध संस्थान और ठाकुर रामसिंह पीठ के माध्यम से इतिहास के क्षेत्र में ठाकुर जी के विचारों को साकार किया जाएगा।

कार्यक्रम के मुख्यातिथि सांसद श्री अनुराग ठाकुर ने कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए बधाई दी और स्वयं को शोध संस्थान के इस समापन समारोह में बुलाने के लिए आयोजकों का धन्यवाद किया। उन्होंने कहा कि इतिहास का हमारे जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है जो समाज अपने इतिहास और पूर्वजों को भूल जाता है वह लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकता। भारतीय समाज ही एक ऐसी समाज है जो दुनिया में सबसे पुरातन है। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि हम अपने महापुरुषों की प्रेरणा के कारण ही विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति के वाहक माने जाते हैं। शोध संस्थान नेरी द्वारा किया गया यह शोध का प्रयास सबकी प्रेरणा का केन्द्र बने, यह मेरी हार्दिक इच्छा है। शोध संस्थान नेरी विश्व के सबसे अच्छे शोध केन्द्रों में शुमार हो यह मैं चाहता हूं। श्री अनुराग ठाकुर जी द्वारा शोध संस्थान में बनने वाले छात्रावास के लिए २५ लाख, एक सचल पुस्तकालय और ग्यारह हजार पुस्तकें शोध संस्थान के पुस्तकालय को देने की घोषणा की गई। साथ ही उन्होंने गांव से आए हुए लोगों का भी धन्यवाद किया। इस दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद में शोध संस्थान के निदेशक मण्डल के सदस्य डॉ. सुदर्शन गुप्ता, श्री सुरेन्द्र नाथ शर्मा, श्री नरेन्द कुमार नन्दा, श्री प्रेम सिंह भरमौरिया, श्री प्यार चन्द परमार, डॉ. विकास शर्मा, श्री जगवीर चन्देल, श्री प्रवीण भट्टी, प्रो. शक्ति सिंह, डॉ. मनोज शर्मा, प्रो. रामपाल, प्रो. ऋषि भारद्वाज आदि कार्यकर्ता व्यवस्था पक्ष को विधिवत् सम्पूर्ण करने के लिए अन्य सभी कार्यकर्ताओं के साथ सक्रियता से डटे रहे।

शोध संस्थान के महासचिव श्री भूमिदत शर्मा जी ने मुख्यातिथि, कार्यक्रम के अध्यक्ष, विद्वानों, पत्रकारों व उपस्थित सभी सज्जनों का धन्यवाद किया।

सहायक आचार्य,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
जिला शिमला - हि.प्र.

गतिविधियां

प्यार चन्द परमार

नव संवतसर अभिनन्दन उत्सव

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के अवसर पर कलियुगाब्द ५१२१ तदनुसार ६ अप्रैल २०१९ को देवसदन कुल्लू में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर व हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी तथा भारतीय इतिहास संकलन समिति कुल्लू द्वारा एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें हिन्दू संस्कृति में नवसंवत् की परम्परा पर विद्वानों ने अपने विचार रखे। इस संगोष्ठी के अध्यक्ष पूर्व प्राचार्य डॉ. बलवीर सिंह ठाकुर तथा मुख्य वक्ता के रूप में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के उत्तर क्षेत्रीय शारीरिक शिक्षण प्रमुख संजीवन रहे। उन्होंने अपने वक्तव्य में भारत की नवसंवतसर परम्परा और सृष्टि की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला। आज से एक अरब पंचानवे करोड़ वर्ष पूर्व सृष्टि का आरम्भ हुआ था। इसलिए विश्व के सभी धर्मों के नए वर्षों की परम्परा में हमारी नववर्ष की परम्परा सबसे प्राचीन है। हिन्दू परम्परा में इसे सृष्टि संवत्, कलि संवत्, विक्रमी संवत्, शक संवत् के नाम से जाना जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि सृष्टि का पुनः सृजन महाराज मनु ने मनाली से किया। इसलिए मनाली में मनुधाम बनाने की योजना है, जिसे शीघ्र ही मूर्तरूप दिया जाएगा। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के कार्यकारिणी सदस्य एवं ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान के निदेशक चेतराम ने कहा कि भारतीय कालगणना विश्व में सबसे प्राचीन है। यह नासा ने भी सिद्ध किया है। सभी हिन्दुओं का कर्तव्य बनता है कि अपने इस पुरातन सांस्कृतिक उत्सव को धूमधाम से मनाया जाए। हमारी आने वाली पीढ़ी पश्चिमी देशों की चकाचौंध में अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूलती जा रही है। हमें इन्हें अपनी संस्कृति की खूबियों से अवगत करवाने की आवश्यकता है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन समिति के हिमाचल प्रदेश के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. सूरत ठाकुर ने कुल्लू जनपद में मनाई जाने वाली नवसंवत् परम्परा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यहां इस दिन भोर होते ही घर की गृहणी परिवार के सभी सदस्यों को गुड़ खिलाती है। माना जाता है कि इससे पूरा वर्ष अच्छा गुजरता है और परिवार में मधुर संबन्ध बने रहते हैं। कुल्लू में इसे नोऊआं साजा, गुला साजा, लेहुरा साजा, शुडकु साजा ने नाम से जाना जाता है। इस दिन पुरोहित अपने यजमानों के घर जाकर नवसंवत् का वर्षफल सुनाते हैं तथा वर्ष में होने वाली घटनाओं के बारे में देवमन्दिरों में देवता के चेले भविष्यवाणी करते हैं। हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के सदस्य एवं नेरी शोध संस्थान के वैचारिक प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने नए संवत् के शास्त्रों में वर्णित पहलुओं पर अपना उद्बोधन दिया। उन्होंने बताया कि समय का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति में वैज्ञानिक ढंग से विवेचित किया गया

है। हिमाचल कला संस्कृति के सचिव डॉ. कर्म सिंह ने कहा कि अकादमी हर वर्ष इस दिन संगोष्ठी का आयोजन किया करेगी। कुल्लू में इसी दिन विरशू गीतों पर चरासा नृत्य करने की परम्परा है, अतः इस कार्यक्रम में महिला मंडल कमांद की महिलाओं ने चरासा नृत्य की भावविभोर करने वाली प्रस्तुति दी। कुल्लू की रूपी नाटी में चैत्र मास में कन्याएं देव मन्दिर में शरानी गीत गाती है। आकृति ठाकुर और श्रुति ठाकुर ने शरानी गीत गाया। जिसे दर्शकों ने तालियों की गड़गड़ाहट से सराहा। इस अवसर पर सुभाष शर्मा ने वर्षफल सुनाया और विजय सिंह ठाकुर ने इतिहास पुरुष का वाचन किया।

इक्कीसवां डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह

डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति, दिल्ली द्वारा इक्कीसवें राष्ट्रीय पुरस्कार का आयोजन दिल्ली के श्री कालका जी मंदिर, महंत निवास परिसर, डेरा जोगियां में कलियुगाब्द ५१२०, २४ फरवरी, २०१९ को किया गया। कार्यक्रम के अध्यक्ष गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, बृहत्तर नोएडा के कुलपति डॉ भगवती प्रसाद शर्मा तथा मुख्य अतिथि श्री कालिकापीठाधीश्वर महन्त सुरेन्द्र नाथ अवधूत जी रहे। प्रधानमंत्री कार्यालय के पूर्व विज्ञान एवं तकनीकी सलाहकार डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय जी को भारत के वैदिक ज्ञान को वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध करने तथा सृष्टि रहस्य सम्बन्धी वैदिक अवधारणा पर किए गए उत्कृष्ट कार्य के लिए सम्मानित कर प्रशस्ति पत्र, शाल, स्मृति चिन्ह तथा ५० हजार रूपये का चेक प्रदान किया गया। सन् २००० में सरकारी सेवा से स्वैछिक सेवानिवृत्ति प्राप्त कर आप ने अपना अधिकांश समय शोध कार्य में ही व्यतीत किया। आप का वेद, पुराण, उपनिषदों पर गहन अध्ययन है। आप की प्रकाशित पुस्तकें world beyond Quantum, Cosmological Behaviors, Consciousness - the ultimate womb तथा द्रष्टव्य जगत का यथार्थ प्रमुख हैं। उन्होंने अपने वक्तव्य में बाबा साहब आपटे स्मारक समिति द्वारा किए जा रहे कार्यों की सराहना की और अपने सम्मानित करने के लिए धन्यवाद किया। बाबा साहब आपटे स्मारक समिति गत् २१ वर्षों से इतिहास, पुरातत्व व भारतीय दर्शन एवं वैदिक चिन्तन के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रदान करता है। इस शुभ अवसर पर बाबा साहब आपटे स्मारक समिति के अध्यक्ष सुदर्शन सरीन, महासचिव सुरेन्द्र नाथ शर्मा, कोषाध्यक्ष विजय शर्मा, उपाध्यक्ष श्री कृष्णानन्द सागर तथा धीरेन्द्र प्रताप सिंह बाबा साहब आपटे स्मारक समिति से जुड़े कार्यकर्ता तथा मूर्धन्य विद्वानों ने भाग लिया।

जनरल जोरावर सिंह जयन्ती समारोह

जनरल जोरावर सिंह स्मारक समिति धनेटा तथा हिमाचल प्रदेश कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला द्वारा जनरल जोरावर सिंह जयन्ती समारोह का आयोजन १३ अप्रैल २०१९ को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान गौना-करौर में किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्यातिथि श्री चेतराम गर्ग रहे व श्री राजेन्द्र पाल शर्मा प्राचार्य डाईट ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

गांव व डा. नेरी, तह. व जिला हमीरपुर हि.प्र.